'सरस्वती' और राष्ट्रीय आन्दोलन

(1900 से 1920)

हरप्रकाश गौड़

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के भारतीय भाषा केन्द्र

की एम0फिल0 उपाधि के लिए प्रस्तुत

लघु शोध-प्रबंध

भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली - 110067

1978

JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
CENTRE OF INDIAN LANGUAGES

NEW MEHRAULI ROAD
NEW DELHI-110067

Dated 1.7.1978

Certified that the material in this dissertation "Sarswati Aur Rashtriya Andolan" (1900 to 1920) has not been previously submitted for any other degree of this or any other University.

Chairman,
Centre of Indian
Languages (S.L.)
JNU, New Delhi-67

(Kedar Nath Singh)
Supervisor
&
Associate Professor
Centre of Indian Languages
JNU, New Delhi.

विषय - सूची

	आभार प्रदर्शन	
	प्राक्कथन	
अध्याय - 1	भारतेन्दु युग में राष्ट्रीय चेतना का विकास	1-15
अध्याय - 2	राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रकृति और विकास	16-30
अध्याय - 3	राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति 'सरस्वती' का दृष्टिकोण	31-63
अध्याय - 4	राष्ट्रीय आन्दोलन का 'सरस्वती' पर प्रभाव	64-90
	उपसंहार	91-92
	संदर्भ ग्रंथ सूची	93-95

— 0 —

आभार

प्रणत हूँ श्रद्धेय गुरुवर डा० नामवर सिंह के सम्मुख, जिन्होंने विषय - चयन से लेकर प्रबन्ध की समाप्ति तक निरन्तर प्रेरणा, प्रोत्साहन तथा दिशा-निर्देशन दिया ।

आभारी हूँ अपने निर्देशक डा० केदार नाथ सिंह के प्रति, जिनके सतत प्रोत्साहन तथा निर्देशन में इस कार्य का पूरा होना निर्धारित अवधि में संभव हो सका ।

कृतज्ञ हूँ बन्धुवर श्री मोहन श्रोत्रिय, श्री रामबक्ष तथा श्री रामवीर सिंह के प्रति, जिन्होंने समय-समय पर विचार-विमर्श में योग दिया ।

—

प्राक्कथन

भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन केवल राजनैतिक ही नहीं था । उसका मुख्य लक्ष्य अवश्य ही स्वराज्य प्राप्ति था, परन्तु इस लक्ष्य तक पहुंचने के लिए उसका स्वयं राष्ट्रीय उत्थान के आन्दोलन का हो गया था । प्रारंभ में कांग्रेस अपने प्रत्येक वार्षिक अधिवेशन में अपनी सहयोगी संस्था के रूप में 'सामाजिक कान्फ्रेंस' का अधिवेशन किया करती थी । 1917 में ही कांग्रेस ने दलित जातियों की कठिनाइयों को दूर करने तथा स्त्रियों के मताधिकार के विषय में प्रस्ताव पास किए थे । छुआछूत निवारण तथा स्त्री समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करना कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम के महत्वपूर्ण अंग थे ।

कांग्रेस प्रारंभ से ही शासन संबंधी सुधारों के साथ-साथ आर्थिक सुधारों की मांग करती आ रही थी । स्वदेशी और बहिष्कार जैसे आर्थिक आन्दोलनों को राजनैतिक हथियार के रूप में स्वीकार किया गया था ।

शिक्षा और भाषा की समस्या राजनीति से संबंधित रही है । कांग्रेस ने अपने प्रस्तावों में निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा पर बल देकर, कला-कौशल की शिक्षा में रुचि दिखाई । स्वदेशी आन्दोलन के अन्तर्गत, देशी भाषाओं के माध्यम से शिक्षा दी जाने की मांग की गई ।

इस प्रकार भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन बहुआयामी रहा है । जिसके फलस्वरूप इस आन्दोलन से प्रभावित 'सरस्वती' के प्रस्तुत अध्ययन में मैंने केवल राजनैतिक भावनाओं से संबंधित विषयों का ही विवेचन - विश्लेषण नहीं किया अपितु सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति संबंधी पहलुओं को भी राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रभाव का अंग मानकर उसकी विवेचना की है ।

इसी पृष्ठभूमि में 'सरस्वती' में प्रकाशित साहित्य एवम् सम-सामयिक महत्व के विषयों पर लिखे लेख तथा टिप्पणियों का विवेचन किया गया है ।

प्रत्येक युग का साहित्य तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों, राजनीति एवं अर्थनीति से प्रभावित होता है तथा स्वयं भी उन स्थितियों को प्रभावित करता है । अतः मेरी यह धारणा रही है कि साहित्य का अध्ययन इस युग के सामाजिक संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में ही किया जा सकता है । इसलिए मैंने प्रस्तुत शोध-प्रबंध में यह प्रयास किया है कि 'सरस्वती' के माध्यम से इस शताब्दी के शुरू के दो दशकों के सृजनात्मक साहित्य एवं साहित्य-चिन्तन को उनके समस्त व्यापक सामाजिक संदर्भों के भीतर विश्लेषित - व्याख्यायित किया जाय ।

'सरस्वती' को चूंकि भारतेन्दु युग के साहित्य की अगली कड़ी माना जाता है, इस कारण पहले अध्याय में पृष्ठभूमि के रूप में भारतेन्दु-युगीन साहित्य के उन पहलुओं का विवेचन किया है जिनको आधार बनाकर भारतेन्दु युग के लेखकों ने जनता में राजनैतिक चेतना को उभारा है । दूसरे अध्याय में राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रकृति तथा विकास को हिन्दी साहित्य की सापेक्षता में देखा गया है । तीसरे अध्याय में 'सरस्वती' की नीति को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है । 'सरस्वती' ने राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रभाव को किन रूपों में और किस प्रकार ग्रहण किया है, यह चौथे अध्याय का विवेच्य विषय है ।

अध्याय - 1

भारतेन्दु युग में राष्ट्रीय चेतना का विकास

19 वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध हिन्दी भाषी प्रदेशों में नवजागरण का काल है। यह काल जहाँ राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से अपने पूर्ववर्ती काल से भिन्न है, वहीं साहित्यिक दृष्टि से भी अलग दिखाई देता है। 19 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अंग्रेजों द्वारा बरती गई राजनीति ने भारतीय जनता के मन में असंतोष का वातावरण पैदा कर दिया था जिसके कारण ' 1857 तक मुश्किल से कोई साल बीता होगा, जिसमें देश का कोई न कोई भाग सशस्त्र विद्रोह से प्रकंपित न हुआ हो।'[1] सिंध, पंजाब, अवध आदि की स्वाधीनता का अपहरण, किसानों पर लगाये गए नए-नए टैक्स, कारीगरों का अनुचित शोषण, झाँसी की रानी को गोद लेने की मनाही, नाना साहब की पेन्शन की समाप्ति, सिविल सर्विस परीक्षाओं में भारतीयों के प्रति अनुचित पक्षपात आदि कार्यों ने जनता के असंतोष को चरम सीमा पर पहुँचा दिया था, जिसका परिणाम था सन् 1857 का विद्रोह।

सन् 1857 के विद्रोह की शक्ति का एक महत्वपूर्ण पक्ष हिन्दू-मुस्लिम एकता थी। विद्रोही सिपाहियों, आम लोगों और उनके नेताओं में हिन्दू-मुस्लिम दोनों थे तथा दोनों ने कदम से कदम मिलाकर इस विद्रोह में भाग लिया था। सारे विद्रोहियों ने मुस्लिम बहादुरशाह जफर को अपना बादशाह स्वीकार किया था। हिन्दू और मुसलमान विद्रोहियों ने एक दूसरे की भावना की कद्र की थी। एक अंग्रेज अधिकारी ने बाद में शिकायत की 'इस मामले में हम मुसलमानों को हिन्दुओं के खिलाफ खड़ा नहीं कर सके।'[2] इससे स्पष्ट होता है कि

1- बिपन चंद्र, स्वतंत्रता संग्राम, पृ0 40

2- वही, पृ0 45

भारतीय राजनीति और यहाँ के जनजीवन में 1857 से पहले साम्प्रदायिक तत्व नहीं पनप पाये थे । इस विद्रोह को सरकार ने किसी प्रकार दबा दिया । किन्तु यह विद्रोह अलाव की आग थी जो भारतीय जनमनस में भीतर ही भीतर सुलग रही थी । भय और आतंक के कारण हिन्दी लेखकों ने इस विद्रोह की चर्चा अपनी रचनाओं में नहीं की । लेकिन जन-साधारण की आवाज, उसकी पुकार को बन्दूकों और तोपों के गोलों से रोकना सहज काम नहीं । इसलिए 'खूब लड़ी मरदानी अरे झांसी वाली रानी'[3] आदि लोक गीति के माध्यम से जन-सामान्य ने अपनी विद्रोही भावना को निडर होकर अभिव्यक्ति की ।

1857 के विद्रोह से भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई देने लगे थे । भारत का शासन ईस्ट-इंडिया कम्पनी के हाथ से निकलकर महारानी विक्टोरिया के हाथ में चला गया था । लोगों ने समझा कि उस शासन परम्परा का जिसे जान ब्राइट ने 'ऐ हंड्रड यीअर्स आव क्राइम' कहा था - का अन्त हो गया है । महारानी विक्टोरिया ने भारतीयों के लिए ''उदार तथा सहृदयतापूर्ण'' घोषणा-पत्र तैयार किया । इस घोषणा-पत्र से महारानी का भारतीय जनता के प्रति अगाध प्रेम ही प्रगट होता था । विद्रोह से पहले भारतीयों को दिए गए उदारतापूर्ण आश्वासन और डलहौजी द्वारा बरती गई नीति को देखते हुए उस समय घोषणा-पत्र के आश्वासन और भी हितकारी लगे । विद्रोह से पहले अंग्रेजों द्वारा बरती गई दमनकारी नीति की तुलना लोगों ने इन आश्वासनों से की और अपने भाग्य को सराहा । उनका भय और असंतोष दूर हुआ । साहित्यकारों ने अपनी लेखनी अंग्रेजी राज्य के गुणगान में खूब चलाई –

परम मोक्षफल राजपद परसन जीवन माहि ।
बृटन देवता राजसुत पद परसहु चित माहि ।।[4]

3- बुन्देलखण्ड में प्रचलित लोकगीत, जिसके आधार पर सुभद्रा कुमारी चौहान ने 'झांसी की रानी' कविता लिखी ।

4- भारतेन्दु - ग्रंथावली, पृ0 702

इंडिया कौन्सिल एक्ट (1861 ई0), हाईकोर्ट और अदालतों की स्थापना (1863 ई0), अनेक रियासतों के करों की माफी आदि कार्यों ने जनता को खुश कर दिया। भारतीय जनता ने महारानी विक्टोरिया की छत्रछाया में अपने आपको सुरक्षित तथा सुखी महसूस किया। इसलिए इस युग के साहित्यकारों की रचनाओं में जो राजभक्ति की छाया दिखाई देती है, उसका एक स्त्रोत यही था। 1857 के विद्रोह से पहले कम्पनी के शासन की तुलना में महारानी विक्टोरिया का शासन लोगों को भिन्न लगा तथा इस शासन में उन्हें सभी प्रकार की स्वतंत्रता के आधार दिखाई देने लगे। 1877 के दिल्ली दरबार में जहाँ देशी राजा महाराजाओं ने अपनी राजभक्ति का विराट प्रदर्शन किया, वहीं साहित्यकारों के बहुत बड़े वर्ग की लेखनी से 'पूरी अमी की कटोरिया-सी, चिर जीवो सदा विक्टोरिया रानी' तथा

जयति धर्म सब देश जय भारत भूमि नरेश।
जयति राज राजेश्वरी जय जय जय परमेश।।[5]

आदि प्रशस्तियाँ फूट पड़ीं।

तत्कालीन राजनीति का दूसरा पक्ष अन्धकारमय था जो भारतीय जनता के लिए अभिशाप था। लेकिन उस अभिशाप ने जनचेतना के बीज अंकुरित कर दिये थे। सरकार के जन विरोधी कानून, पुलिस के अत्याचार, खर्चीला दिल्ली दरबार, प्रेस एक्ट, अफगान युद्ध, अकाल, महामारी, बेरोजगारी, टैक्स आदि साम्राज्यवाद की नीतियों ने साहित्यकारों के भ्रम को शीघ्र ही तोड़ दिया तथा उन्होंने महसूस किया –

पराधीन दुःख महा सुखी जगत स्वाधीन।
सुखी रमत सुक बन बिषे कनक पींजरे दीन।।

5- अंबिकादत्त व्यास, 'मन की उमंग'; उदयभानु सिंह, महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग, पृ0। से उद्धृत

अंग्रेजों की कूटनीति को समझकर भारतेन्दु और उनके युग के अधिकांश साहित्यकारों की राजभक्ति के आगे प्रश्न चिन्ह लग गया । फलतः उनकी रचनाओं में अंग्रेजों के प्रतिगामी कानूनों, आर्थिक शोषण, पुलिस आदि के अत्याचारों की आलोचना का स्वर सुनाई देने लगा । भारतेन्दु ने अंग्रेजों की नीति, पुलिस, अदालत-कचहरी आदि की आलोचना के लिए 'पहेली' को प्रमुख माध्यम बनाया । पहेलियों के जरिये जन-सामान्य के मन में, अंग्रेजी सरकार और उसके प्रशासन के प्रति घृणा उभार कर, स्वदेश भक्ति के भाव पैदा किए । अंग्रेजों की चरित्रगत विशेषताओं को अपनी एक मुकरी में भारतेन्दु ने इस प्रकार व्यक्त किया है –

भीतर - भीतर सब रस चूसै, बाहर से तन- मन धन मूसै ।
जाहिर बातन में अतितेज क्यों सखि साजनद नहिं अंगरेज ।।

शिक्षा और बेकारी पर दूसरी मुकरी देखिए –

तीन बुलाए तेरह आवै, निज-निज विपदा रोई सुनावै ।
आँखौ फूटै भरा न पेट क्यों सखि साजन नहिं ग्रेजुएट ।।

सरकारी अमलों पर –

मतलब ही की बोलै बात, राखै सदा काम की घात ।
डोलै पहिने सुन्दर समला क्यों सखि सज्जन, नहिं सखि अमला ।।

भारतीय पुलिस पर, जिसे देखकर भारतीय जन साधारण का मन भय और आतंक के कारण पीपल के पत्ते के सदृश्य डोलने लगता था –

रूप दिखावत सरबस लूटै, फन्दे में जो पड़े न छूटै ।
कपट कटारी हिय में हुलिस, क्यों सखि सज्जन नहिं सखि पुलिस ।।

भारतेन्दु के समसामयिक साहित्यकारों में पं० प्रतापनारायण मिश्र ने टैक्स और महँगाई को अपनी कविता का विषय बनाकर अंग्रेजी सरकार की कटु आलोचना की है ।

'तृप्यन्ताम' (1890) उनकी एक लम्बी कविता है जिसमें अनेक देवी-देवताओं को स्मरण किया गया है परन्तु तर्पण करते हुए कवि को बार-बार देश दशा की याद आ जाती है । वह बार-बार अपने मन में सोचता है जब हाथ, सिर गुलाम है तो क्या मै इन्हीं हाथों से तर्पण करूँ ? यही सिर उन्हें झुकाऊँ ? जिस जीभ से शासकों की खुशामद करनी पड़ती है, उसी से उन्हें 'तृप्यन्ताम' कहूँ ? मर्माहत होकर कवि ने इस कविता में गुलामी के प्रति क्षोभ व्यक्त किया है । गुलामी के दिनों में लोग व्यर्थ देवताओं को दूध पिलाने की बात कहते है, यहाँ तो टैक्स और महँगाई के मारे साग-पात मिलना सरल नहीं है –

महँगी और टिक्स के मारे हमहिं क्षुधा पीड़ित तन छाम ।
साग पात लौ मिलै न जिय भरि लेबो वृथा दूध को नाम ।।

महँगी और टैक्स के परिणाम भी देखिए –

जहाँ कृषि, वाणिज्य, शिल्प, सेवा सब माहीं ।
देसिन के हित कछू तत्व कहूँ वैसेहु नाहीं ।। (ब्रेडला स्वागत)

यदि कोई व्यक्ति अदालत, कचहरी, पुलिस आदि के शिकंजे से किसी तरह बचकर अकाल और महँगाई के खिलाफ आवाज उठाता है तो उसका स्वागत बन्दूकों की गोलियों से किया जाता है । इसलिए अंग्रेजी राज्य में मृत्यु देवता ही पूर्णतः तृप्त किया जा सकता है –

लेसन इनकम चुंगी चंदा पुलिस अदालत बरसा घाम ।
सबके हाथन असन जीवन संसयमय रहत मुदाम ।।
जो इनहूँ ते प्रान बचे तो गोली बोलति आय धड़ाम ।
मृत्यु देवता नमस्कार तुम सब प्रकार बस तृप्यन्ताम ।।[6] (तृप्यन्ताम)

6- प्रतापनारायण मिश्र की कविता, 'तृप्यन्ताम', भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, पृ0 108 से उद्धृत

साम्राज्यवादी सरकार और उसके काले कानूनों की ऐसी दो टूक आलोचना पूरे द्विवेदी युग में नहीं दिखाई देती । यह वह समय था जब नेशनल कांग्रेस मात्र कुछ प्रशासनिक सुधारों के लिए, अंग्रेजी सरकार के सामने प्रार्थना करती थी ।

इस युग के प्रेमधन आदि अन्य कवियों ने भी कचहरी, कानून, पुलिस, राज-कर्मचारी, बेरोजगारी, महंगाई, अकाल आदि को अपने काव्य का विषय बनाकर साम्राज्यवादी सरकार तथा उसकी रीति-नीतियों की कटु आलोचना की । प्रेमधन की 'होली की नकल' प्रसिद्ध कविता है जिसमें उन्होंने टैक्स लगाने पर क्षोभ व्यक्त किया है ।

रहे विलायत जो हरखाय, भारत सों धन रोज कमाय ।
चैन करै जो मजे उड़ाय, तिसका टिक्कस भी छुट जाय ।।
यह अचरज देखो तो आय सोचत बुद्धि बिकल हो जाय ।[7]

अंग्रेजी राज्य में टैक्स उस अभागी जनता पर लगाया जाता है, जिसके पास न ओढ़ने को कपड़े हैं और न पेट की ज्वाला को शांत करने के लिए पर्याप्त भोजन । ऐसी भारतीय जनता की रग-रग से पैसा वसूल कर विलायत में गुलछर्रे उड़ाने वाले अंग्रेज इस टैक्स से बच जाते हैं ।

19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतीय मध्यवर्ग का एक बड़ा हिस्सा पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान और सभ्यता-संस्कृति की शिक्षा-दीक्षा के लिए यूरोप जाने लगा । पश्चिमी शिक्षा प्राप्त इन नवयुवकों ने अपने देश और जाति की पराधीनता को वहाँ अपेक्षाकृत अधिक तीव्रता से महसूस किया । यह वर्ग संस्कारों से सामंती होते हुए भी विचारों से आधुनिक था ।

7- डा० रामविलास शर्मा, भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, पृ० 114 से उद्धृत

पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षा प्राप्त इन नव-युवकों को जब सिर्फ भारतीय होने के कारण सरकारी नौकरियों से बंचित रखा गया तो इस वर्ग में ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति असंतोष की भावना उत्पन्न हुई । इस असंतुष्ट युवावर्ग ने महसूस किया कि जब तक किसी देश या राष्ट्र में स्वाधीनता के लिए अदम्य भावना उत्पन्न नहीं होती तब तक जीवन के किसी भी क्षेत्र में उन्नति तथा विकास के लिए कोई रास्ता नहीं है । पराधीनता का भाव केवल राजनीति के क्षेत्र में ही राष्ट्र को निश्चेष्ट नहीं बनाता अपितु वह धर्म, समाज, उद्योग-धंधे, साहित्य-संस्कृति इत्यादि सभी पक्षों को प्रभावित करता है । इसलिए इस बुद्धिजीवी वर्ग ने दो ही रास्ते अख्तियार किये - जिससे भारतीय जनता का सामाजिक,राजनैतिक स्तर ऊँचा उठ सके । पहला मार्ग था — पत्रिकारिता का और दूसरा संस्थाओं के निर्माण का । स्वातंत्र्योत्तर काल को छोड़कर हिन्दी-साहित्य के किसी भी काल में इतनी पत्र-पत्रिकाएँ नहीं निकली, जितनी इस युग में । डा0 रामविलास शर्मा ने लिखा है, '' युग की (भारतेन्दु युग की) प्रतिभा जनता के निकट अनेक रूप में प्रगट हुई । नाटक, सभा-संस्थाओं में भाषणों, पत्र-पत्रिकाओं में लेखों आदि के द्वारा लेखक जनता तक अपना संदेश पहुंचा सके । इन सबमें पत्र-पत्रिकाएँ ही अधिक स्थायी और दूर-दूर तक पहुंचने वाला साधन थीं ।''[8] स्पष्ट है कि जनता को शिक्षित करने एवं उसमें राजनैतिक, सामाजिक चेतना उभारने में पत्र-पत्रिकाओं ने उस युग में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । काशी हिन्दी पत्रिकारिता का आदि केन्द्र रहा है । यहाँ से, 'बनारस अखबार' , 'सुधाकर', 'कविवचन सुधा' (1868), 'हरिश्चंद्र मैगज़ीन'(1873), 'काशी पत्रिका', 'भारत-जीवन', 'आर्य मित्र', 'सरस्वती-विलास' , 'तिमिर-नाशक' आदि पत्र निकले । कलकत्ता से 'हिन्दी बंगवासी' , 'आर्यवर्त' , 'उचित वक्ता' ,

---

8- डा0 रामविलास शर्मा, भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, पृ0 23

'भारतमित्र' आदि कालाकांकर से 'हिन्दोस्थान', लखनऊ से 'दिनकर - प्रकाश', 'रसिक-पंच', 'काव्यामृत-वार्षिणी', 'भारतभानु' आदि, इलाहाबाद से 'हिन्दी-प्रदीप' पत्र निकले । इनके अतिरिक्त रियासतों से अनेक लघुजीवी पत्र निकले । पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन के अतिरिक्त, सामाजिक, राजनैतिक संस्थाओं का निर्माण भी जन-साधारण की राजनैतिक, सामाजिक शिक्षा का माध्यम बना । 'ब्रिटिश-इंडियन एशोसियेशन' (1851) 'बाम्बे एशोसियेशन' , 'ईस्ट इंडिया एशोसियेशन' (1876),' मद्रास महाजन सभा,' (1881) 'बाम्बे प्रेसीडेन्सी एशोसियेशन ' (1885) आदि की स्थापना इस काल में हुई । इसके अतिरिक्त तत्कालीन धार्मिक और सांस्कृतिक सभाओं ने भारतीय जनता में आत्माभिमान और देशभक्ति की भावना को प्रोत्साहित किया ।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (1885) का जन्म प्रशासनिक सुधारों की मांग करने वाली संस्था के रूप में हुआ लेकिन बाद में वह भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की एकमात्र संस्था बन गई । जैसे-जैसे जनसाधारण का सहयोग मिलता गया कांग्रेस की राष्ट्रीयता उग्र रूप धारण करती गई ।

राजनैतिक चेतना साहित्य को प्रभावित ही नहीं करती अपितु उसे बल और शक्ति भी प्रदान करती है । जो साहित्यिक युग और साहित्यकार राष्ट्रीय संघर्ष से जितना अधिक खाद और पानी लेगा और उसे बढ़ावा देगा, उस युग विशेष अथवा उस साहित्यकार - विशेष का साहित्य उतना ही अधिक शक्तिशाली, जीवंत और जिन्दादिल होगा । ऐसा साहित्य ही जनता में राजनैतिक समझ और राष्ट्रीयता की भावना पैदा करने में सक्षम हो सकता है । यही साहित्य राष्ट्रीय कहलाने का अधिकारी है । निराला संघर्ष की इस शक्ति से परिचित थे । इसीलिए उन्होंने कहा कि संघर्ष से शक्ति मिलती है । भारतेन्दु - युग के लेखकों, प्रेमचंद तथा निराला की साहित्यिक शक्ति और जीवट का स्त्रोत भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन था ।

भारतेन्दु जनता के साहित्यकार थे । उन्होंने सोलह वर्ष की अवस्था में ही हिन्दी भाषी प्रदेशों की यात्रा की थी और उक्त प्रदेशों की जनता की दरिद्रता एवं अभावों को महसूस किया था । प्रतिगामी कानूनों, शोषण पर आधारित व्यापार नीति एवं नस-नए टैक्सों के भार ने जनता को अकाल मौत करने के लिए बाध्य कर दिया था । भारतीय जन-जीवन की ऐसी दुरावस्था देखकर भारतेन्दु ने 'भारत-दुर्दशा' नामक नाटक लिखा । जिसका योगी पहले ही अंक में यह गीत गाता है –

रोअहु सब मिलिके आवहु भारत भाई ।
हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई ।।

भारतेन्दु हिन्दी के पहले साहित्यकार थे जिन्होंने मूक जनता की आशा - आकांक्षाओं, उसके दुःख दर्द को वाणी देकर साहित्य का संबंध जन-जीवन से जोड़ा । उन्होंने तत्कालीन भारतीय जनता की दरिद्रता तथा भुखमरी का मूल कारण - 'पैधन बिदेस चलि जात' बतलाया कि उपनिवेशवादी अंग्रेजी सरकार की व्यापारिक, राजनैतिक एवं शिक्षा-नीति भारतीय जनता के आर्थिक शोषण के लिए बनाई गई है । भारतेन्दु और उनके युग के अधिकांश साहित्यकार अंग्रेजों के इस रहस्य से परिचित थे । इस युग के साहित्यकारों ने न केवल ब्रिटिश सरकार की इस शोषण नीति की आलोचना की बल्कि उन्होंने स्वदेशी, उद्योगधन्धों की स्थापना , शिल्पकारिता आदि पर बल देकर भारतीय जनता को वह रास्ता दिखलाया जिस पर चल कर न केवल वह आर्थिक शोषण से मुक्त होगी बल्कि राजनैतिक पराधीनता की चादर उतार फेंकने में भी सक्षम हो सकी ।

22 दिसम्बर 1872 की 'कविवचन सुधा' में भारतेन्दु ने अंग्रेजी सरकार की व्यापार नीति का पर्दाफाश कर यह दिखलाया है कि भारत का धन अन्ततः पहुंचेगा विलायत ही –

''चाहे कैसे भी द्रव्य एकत्र किया हुआ हो अन्त में सब जायेगा विलायत में, क्योंकि हमारी शौक वस्तु वहाँ से आवेगी, कपड़ा, झाड़-फानूस, खिलौने, कागज और पुस्तकें सब वस्तु विलायत से आवेगी, उसके बदले यहाँ से द्रव्य जायेगा तो परिणाम यह होगा कि चाहे किसी उपाय से द्रव्य तो अन्त में तुम्हारे देश से निकल जायेगा ।''

भारतेन्दु युग के प्रायः सभी लेखकों ने भारतीय धन के विलायत जाने पर रोष व्यक्त किया है । प्रतापनारायण मिश्र के रोष में चिन्ता का भाव है –

सर्वसु लिए जात अँगरेज, हम केवल लेक्चर के तेज ।

श्रम बिन बातें का करती है, कहुँ टटकन गाजै टरती है ।।

अँग्रेजों ने भारत वर्ष में अपने लंबे शासन के दौरान यहाँ अकाल, महामारी, दरिद्रता के घर की गहरी नींव डाल दी । भारतेन्दु व्याकुल होकर लिखते हैं –

''हे पाठक गण, जब हमको इनके असावधानी का स्मरण होता है तब चित्त व्याकुल हो जाता है और लेखनी आगे नहीं चलती । क्या यह अनीति नहीं है कि अनुमान दो सौ वर्ष हुए इनका अधिकार इस देश में है । इन्होंने हमारे धन-धान्य के वृद्धि में कोई उपाय नहीं किया ; और केवल अपनी भाषा सिखाई और सब व्यापार और धन सब अपने हस्तगत किया । क्या यह खेद की बात नहीं है कि हमको कला-कौशल्य से विमुख रखा और आप स्वतः व्यापारी बनकर सब देशभर का धन और धान्य अपने देश में ले गए ।''[9]

स्पष्ट है आर्थिक शोषण में अँग्रेजी शिक्षा भी सहायक थी । इस शिक्षा में अँग्रेजी भाषा पर अधिक बल दिया जाता था । उसमें शिल्पकारिता को कोई स्थान नहीं था । अँग्रेजी सरकार यह नहीं चाहती थी कि यहाँ के लोग कौशल सीखें क्योंकि अगर वे अँग्रेजों की तरह

- -

9- डा0 रामविलास शर्मा, भारतेन्दु हरिश्चंद्र, पृ0 32

की चीजें हिन्दुस्तान में बनाने लगे तो अंग्रेजों का महत्व जाता रहेगा । इसके अलावा जब विलायत से चीजें न आयेंगी वरन् यहीं बनने लगेंगी तो अंग्रेजी फैक्टरियों में बनी वस्तुओं का बाजार समाप्त हो जायेगा । इसलिए उन्हें यहां से जो लाभ होता है वह भी न हो सकेगा । सबसे बड़ा डर उन्हें इस बात का था कि ''कला में युद्ध-विद्या और शस्त्र-निर्माण भी आते है ।''

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के दो मोर्चे थे – ब्रिटिश उपनिवेशवाद विरोधी और दूसरा सामंतवाद विरोधी । ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ों को खाद और पानी देने का काम भारतीय सामंत कर रहे थे । वे अपने न्यस्त स्वार्थों के कारण समूचे हिन्दुस्तान को अंग्रेजों की जंज़ीरों में जकड़े रखना चाहते थे । इसलिए वृक्ष को गिरा देने के लिए यह जरूरी था कि उनकी जड़ों को पोषित करने वाले तत्व- राजा-महाराजा, बड़े-बड़े जमींदारों को नष्ट किया जाता । भारतेन्दु-युग के साहित्यकारों ने इन दोनों मोर्चों पर जमकर लड़ाई की ।

भारतेन्दु ने उन सामंतों की खूब खबर ली जो राष्ट्र की उन्नति में बाधक थे । ऐसे राष्ट्र विरोधी लोग कभी धर्म की आड़ लेते है, तो कभी धन और राजनीति की चादर ओढ़कर भोली-भाली भारतीय जनता को गुमराह करते है । भारतेन्दु ने ऐसे सामंतों को जनता के बीच नंगा कर दिया । बलिया वाले भाषण में उन्होंने कहा था –

'कोई धर्म की आड़ में, कोई देश की चाल की आड़ में, कोई सुख की आड़ में छिपे है । उन चोरों को वहां-वहां से पकड़ कर लाओ । घर में कोई मनुष्य व्यभिचार करके आवे तो जिस क्रोध से उसको पकड़ कर मारोगे और जहां तक तुम्हारे में शक्ति होगी उसका सत्यानाश करोगे उसी तरह इस समय जो-जो बातें तुम्हारे उन्नत पथ में कांटा हों उसकी जड़ खोदकर फेंक दो । कुछ मत डरो । जब तक दो सौ बदनाम न होंगे, जात से बाहर न निकाल दिए जायेंगे, कैद न होंगे, वरन जान से मार न दिए जायेंगे तब तक

कोई देश भी न सुधरेगा ।''

भारतेन्दु को जनता की शक्ति पर भरोसा था । उन्होंने बलिया वाले उक्त भाषण में जनता को ललकारते हुए कहा था कि राजा-महाराजाओं, पंडितों का मुंह ताकना छोड़कर स्वयम् एक जुट होकर देशोन्नति में लग जाओ –

''भाइयो । राजा-महाराजाओं का मुंह मत देखो, मत यह आशा रखो कि पंडित जी कथा में ऐसा उपाय बतावेंगे कि देश का रुपया और वृद्धि बढ़े तुम आप ही कमर कसो आलस छोड़ो - - - - ।''

भारतेन्दु और उनके सहयोगी जानते थे कि बिना आर्थिक स्वतंत्रता के कोई देश, जाति या समाज राजनैतिक पराधीनता के जुए को उतार फेंकने में सक्षम नहीं हो सकता । इसलिए राजनैतिक स्वाधीनता के लिए जरूरी है कि देश की आर्थिक उन्नति की जाय । तभी देश से दरिद्रता, बेरोजगारी, अकाल आदि के दृश्य समाप्त किए जा सकते हैं और जनता में राजनैतिक, सामाजिक चेतना का विकास संभव हो सकता है । इसलिए भारतेन्दु-युग के साहित्यकारों की दृष्टि बिल्कुल साफ थी, जहां उन्होंने अंग्रेजी साम्राज्यवाद की आर्थिक-शोषण-नीति की आलोचना की है, वहीं उन्होंने देश की उन्नति और विकास के लिए औद्योगीकरण, शिल्पकारिता तथा स्वदेशी जैसी आर्थिक विकास की योजनाएं प्रस्तुत की हैं ।

फरवरी 1874 की 'कविवचन-सुधा' में भारतेन्दु का एक लेख छपा है, जिसमें लेखक ने भारतवासियों से उन वस्तुओं को तैयार करने के लिए कहा है जो विलायत से आती हैं –

''अब भी हम लोगों को कला-कौशल्य की ओर ध्यान देना चाहिए लोगों को तो अंग्रेजी वस्तुओं की रुचि लगी है तो अंग्रेजों के समान सब पदार्थों के कारखाने यहां नियम किए जायं पर अभी यहां के व्यापारियों में इतना सामर्थ्य नहीं है कि अंग्रेजों के समान

लोहा, पीतल इत्यादि मौल्यवान पदार्थ लेकर मिट्टी के वस्तु तक बनावे जैसे कि अंगरेजी व्यापारी माल भेजने लगे देखो बढ़ई आदि छोटे-छोटे व्यापारियों को काम मिलना कठिन हो गया है । यहाँ तक कि घरों की खिड़कियाँ - दरवाजे आदि सब विलायत से बनकर आते है ।''

औद्योगीकरण से ही देश की दरिद्रता - गरीबी समाप्त होगी –

जानि सकै सब कछु सबहि बिबिध कला के भेद ।
बनै बस्तु कल की इते मिटै दीनता खेद ।।

भारतेन्दु ऐसी शिक्षा के पक्षधर थे जिसमें शिल्पकारिता, उद्योग-धंधों पर जोर हो । पश्चिमोत्तर देश में वे शिल्पकारिता का कालेज स्थापित करना चाहते थे । औद्योगीकरण की शिक्षा की आज उतनी ही जरूरत है जितनी भारतेन्दु ने महसूस की थी ।

अक्सर राजनीति तो साहित्य को प्रभावित करती ही है लेकिन महान साहित्यकार भी अपने रचनात्मक साहित्य से राजनीति को प्रभावित किए बिना नहीं रहते । इसलिए प्रेमचंद ने साहित्यकार को राजनीति का अगुआ बताते हुए लिखा है, '' वह देश भक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सचाई भी नहीं बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सचाई है ।''[10]

भारतेन्दु इस कसौटी पर खरे उतरते है । वे हिन्दी साहित्य का ही नहीं, भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का भी नेतृत्व कर रहे थे । उन्होंने अंग्रेजी साम्राज्य की जड़ों में मठा डालने के लिए स्वदेशी जैसे बहुआयामी मंत्र को जन्म दिया जो बंगभंग के बाद भारतीय

10- प्रेमचंद, कुछ विचार, पृ0 21

राष्ट्रीय आन्दोलन की धुरी बन गया । इस मंत्र की सिद्धि के लिए उन्होंने आम जनता, शिक्षित समुदाय, व्यापारियों आदि से अपील की ।

भारतेन्दु ने मार्च 1874 की 'कविवचन-सुधा' में स्वदेशी को अपनाने के लिए एक प्रतिज्ञा-पत्र छापा था –

'हम लोग सर्वान्तर्यामी सब स्थल में वर्तमान सर्वद्रष्टा और नित्य सत्य परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते है और लिखते है कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा न पहिनेंगे और जो कपड़ा कि पहिले से मोल ले चुके है और आज की मिति तक हमारे पास है उनको तो उनके जीर्ण हो जाने तक काम में लावेंगे पर नवीन मोल लेकर किसी भाँति का भी विलायती कपड़ा न पहिनेंगे, हिन्दुस्तान ही का बना कपड़ा पहिनेंगे । हम आशा रखते है कि इसको बहुत ही क्या प्रायः सब लोग स्वीकार करेंगे ।''

भारतेन्दु के अतिरिक्त उस युग के दूसरे साहित्यकारों ने भी इस मंत्र का प्रचार और प्रसार किया । इनमें पं० प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमधन आदि मुख्य थे । पं० प्रताप नारायण मिश्र ने अपनी मातृभाषा हिन्दी और स्वदेशी वस्तुओं की जगह विलायती वस्तुओं को अपनाने वालों पर व्यंग्य करते हुए लिखा है –

'डोढ़ि नागरी सुगुन आगरी उर्दू के रंगराते ।
देसी बस्तु बिहाय बिदेसिन सों सर्वस्व ठगाते ।।
मूरख हिन्दू कस न लहै दुःख जिनका यह ढंग दीठा ।
घर की खाड़ खरखरी लागे चोरी का गुड़ मीठा ।।
निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल,
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को शूल ।'

कहकर भारतेन्दु ने भाषा-प्रेम को देश-प्रेम से जोड़कर देखा । इस युग में भाषा का कोई

निश्चित रूप नहीं बन पाया था । इसलिए इस युग में भाषा के स्वरूप उसकी प्रवृत्ति, व्याकरण तथा लिपि को लेकर खूब वाद-विवाद हुए । भारतेन्दु ने खड़ी बोली हिन्दी और उसके साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए, पत्र-पत्रिकाओं एवं सभा-संस्थाओं की स्थापना की । भारतेन्दु और उनके मण्डल के लेखकों ने हिन्दी भाषा को राष्ट्र-भाषा का गौरव दिया । उनका भाषाई आन्दोलन स्वदेशी आन्दोलन का अंग बन गया जो भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की बहुत बड़ी शक्ति थी । इसलिए उन्होंने कहा –

''परदेशी वस्तु और परदेसी भाषा का भरोसा मत रखो , अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करो ।'' (भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है)

इस प्रकार भारतेन्दु और उनके मण्डल के लेखकों ने भाषा उन्नति को देशोन्नति से जोड़कर देखा , जनता में राष्ट्रीय चेतना उभारने का हिन्दी को सबल माध्यम माना ।

भारतेन्दु ने समाज के उन प्रतिक्रियावादी तत्वों पर प्रहार किया जो भारतीय जनता की एकता को खंडित करके राष्ट्र के विकास में बाधक थे । उन्होंने देशोन्नति के लिए विभिन्न धर्मावलंबी भारतीय जनता से एकता की अपील की – 'यह समय इन झगड़ों का नहीं है, हिन्दू, जैन, मुसलमान सब आपस में मिलिये ।' इस प्रकार भारतेन्दु ने अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज्य करो' वाली नीति को उद्घाटित करके राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम की सशक्त पृष्ठभूमि तैयार की ।

—

अध्याय - 2

राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रकृति और विकास

प्रारंभ में तो ब्रिटिश उपनिवेशवादियों ने भारत को एक राष्ट्र के रूप में मानने से भी इन्कार कर दिया था, लेकिन बाद में जन-आन्दोलनों के दबावों के कारण उन्होंने यह तो स्वीकार कर लिया कि भारत में राष्ट्रीयता की भावना अवश्य है, पर इस शर्त के साथ कि यह 'राष्ट्रीयता' अंग्रेजों की ही देन है । वास्तव में इस धारणा का प्रचार अंग्रेजों ने जानबूझ कर किया था । रजनीपाम दत्त ने लिखा है कि, '' जब मैकाले ने भारत की प्राचीन शिक्षा-पद्धति के समर्थकों को हराकर साम्राज्यवाद की तरफ से यहां अंग्रेजी ढंग की शिक्षा जारी की तो उसका उद्देश्य भारत के लोगों में राष्ट्रीय चेतना पैदा करना नहीं, बल्कि उसकी जड़ खोद डालना था । यह साम्राज्यवाद की पूरी व्यवस्था में निहित अन्तर्विरोधों का परिणाम था कि शिक्षा की जो पद्धति साम्राज्यवाद के हितों की रक्षा करने के लिए जारी की गई थी उसीने भारत के लोगों के लिए इंग्लैंड के जनवादी जन-आन्दोलनों और जन-संघर्षों से, मिल्टन, शैली तथा वायरन जैसे कवियों से प्रेरणा प्राप्त करने का भी रास्ता खोल दिया ।''[1]

इसके साथ ही यह भी महत्वपूर्ण पहलू है कि उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारतीय पूंजीपति वर्ग अस्तित्व में आने लगा था जिसका ब्रिटिश साम्राज्यवाद से अंततः संघर्ष होना था । 1853 में बम्बई में भारतीय पूंजी से, पहली सूती मिल खोली गयी ।

1- रजनीपाम दत्त, भारत, वर्तमान और भावी, पृ0 117

1880 तक भारतीय स्वामित्व वाली 150 मिलें बन गयीं, जिसमें लगभग पचास हजार देशी मजदूर काम करते थे । देश के अन्य भागों में अन्य उद्योग भी खड़े किए जाने लगे ।[2]

इस देशी पूंजीपति वर्ग के उदय और उनके द्वारा कलाकार खानों की स्थापना, पाश्चात्य विचारों से प्रशिक्षित बुद्धिजीवी वर्ग के उदय और विकास से भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास की आत्मगत परिस्थितियां पैदा हुईं ।

राष्ट्रीय आंदोलन की वस्तुगत परिस्थितियों का निर्माण रेल की स्थापना, आधुनिक डाक तार व्यवस्था, अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार-प्रसार तथा अंग्रेजी साम्राज्य की शोषण नीति और उनके प्रतिगामी कानून आदि ने किया । वास्तव में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म निश्चित रूप से ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासकों के निर्देश और उनकी नीति के अनुरूप हुआ जिससे जनता के बढ़ते हुए विरोध और असंतोष को सुरक्षित और वैधानिक रूप देकर निकाला जा सके । इसलिए कांग्रेस को प्रारंभ में यह आशा बनी रही कि सरकार के प्रशासनिक अधिकारी उन तमाम कष्टों को दूर करने के प्रयास करेंगे जिनसे जनता पीड़ित है । ब्रिटिश सरकार के भारत स्थित प्रतिनिधियों ने जब इन आशाओं पर पानी फेर दिया तब भारतीय नेताओं ने अंग्रेज अधिकारियों की जगह इंग्लैंड के शासकों से आशा बांधी । अब भारतीय शिष्ट-मंडल इंग्लैंड जाने लगे और लोग ब्रिटिश नेताओं तथा भारत से सहानुभूति रखने वाले अंग्रेज संसद सदस्यों से जाकर मिले और उनका सहयोग प्राप्त करने का प्रयास करने लगे । जनमत को अपने पक्ष में करने के लिए इंग्लैंड के समाचारपत्रों पर प्रभाव डाला गया और वहां भारतीय दृष्टिकोण का प्रचार करने के लिए सभा-सोसायटियों की स्थापना की गयी । यह कार्य भी 1905 तक चला ।[3]

2- रजनीपाम दत्त, आज का भारत, पृ0 319

3- डा0 ताराचन्द, भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का इतिहास, द्वितीय खण्ड, पृ0 299

राजा राममोहन राय बहुत पहले इस तथ्य से परिचित थे । उन्होंने कहा था कि "हर अच्छा शासक जो मनुष्य की कमजोरियों से वाकिफ है और संसार के चिरंतन-शासक ईश्वर का सम्मान करता है, वह जरूर इस बात को मानता है कि एक विशाल साम्राज्य के प्रबंध में कितनी ही तरह की गलतियां हो सकती है, वह प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शिकायतें प्रस्तुत करने की सुविधा देगा । इस महत्वपूर्ण उद्देश्य की सिद्धि के लिए प्रकाशन की अबाध स्वतंत्रता एकमात्र असरदार तरीका है ।"[4]

कांग्रेस की स्थापना भी लगभग इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए हुई थी । कांग्रेस का संस्थापक ह्यूम भारत में प्रशासनिक अधिकारी था । उसने अपने प्रशासनिक जीवन के दौरान यह अनुभव किया था कि सरकार जनता से खतरनाक ढंग से कटी हुई है । शासक और शासितों में संपर्क का कोई स्वीकृत माध्यम नहीं है और सरकार को भारतीयों की जरूरतों और राय से परिचित कराने का कोई वैज्ञानिक साधन नहीं है । सन् 1872 में ही उसने नार्थ ब्रुक को चेतावनी दी थी कि ब्रिटिश राज्य को लकवा-सा मार गया है । उसने स्पष्ट रूप से कहा था कि "हुजूर शायद ही समझ पाएं कि हमारा शासन कितना अस्थिर है - - - मैं बहुत दृढ़ता के साथ यह कहता हूं कि हमारे साम्राज्य का भाग्य डावांडोल है और किसी भी समय क्षितिज से बादल का कोई टुकड़ा, जिसकी तरफ किसी का ध्यान नहीं जा रहा है, बढ़कर सारे देश पर छा सकता है और अराजकता और विनाश की वर्षा कर सकता है ।"[5]

ह्यूम को यह अनुभव हो गया था कि भारतीय जनता में विशेषकर किसानों और निम्नवर्ग के लोगों में ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध गहरा आक्रोश है और वे उसके विरुद्ध कुछ भी कर गुजरने के लिए आतुर दिखाई देते है । ब्रिटिश साम्राज्य पर आई हुई इस विपत्ति

4- के० दामोदरन, भारतीय चिंतन परंपरा, पृ० 266

5- डा० ताराचन्द, भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का इतिहास, द्वितीय खण्ड, पृ० 322

से बचने के लिए कदम उठाना जरूरी था । इसलिए तीन उद्देश्यों को लेकर राष्ट्रीय स्तर का संगठन बनाने की योजना प्रस्तुत की गई । ''पहला उद्देश्य तो यह है कि भारत की सारी जनता के विभिन्न वर्गों को एक राष्ट्रीयता के सूत्र में पिरो दिया जाय । दूसरा उद्देश्य यह है कि सभी क्षेत्रों में यानी आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक, राजनैतिक - में राष्ट्र का पुनरूज्जीवन हो और तीसरा उद्देश्य यह है कि भारत और ब्रिटिश के बीच के बंधन को और दृढ़ बनाया जाए और इसके लिए उन सभी स्थितियों को बदला जाय, जो अन्यायपूर्ण या हानिकार हों ।''[6] इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए नेशनल कांग्रेस की स्थापना की गई ।

25 दिसम्बर 1885 को बम्बई में कांग्रेस का पहला अधिवेशन हुआ , जिसमें 72 प्रतिनिधियों ने भाग लिया । अध्यक्षीय भाषण में कलकत्ता के प्रमुख वकील, डब्लू0 सी0 बनर्जी ने कहा – ''अधिकारी वर्ग के प्रति राजभक्ति का इजहार करती हुई कांग्रेस सिर्फ इतनी मांग करती है कि सरकार के आधार को विस्तृत किया जाय और सरकार में जनता का उचित और न्यायोचित हिस्सा हो ।''

रजनीपाम दत्त ने कांग्रेस की इस नीति का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि '' एक तरफ तो कांग्रेस जन - आन्दोलन को 'खतरे' से बचाने के लिए साम्राज्यवाद की ओर सहयोग को बढ़ाती थी , दूसरी तरफ वह राष्ट्रीय संघर्ष में जनता का नेतृत्व करती थी। -- -- यह दोहरापन भारतीय पूंजीपतिवर्ग की दोरंगी या दुलमुल भूमिका का परिचायक है । भारत के पूंजीपति हितों का टकराव ब्रिटिश पूंजीपतिवर्ग के हितों से होता है इसलिए वह भारतीय जनता का नेतृत्व तो करना चाहता है पर उसे सदा यह आशंका भी रहती है कि जन आन्दोलन की रफ्तार कहीं 'इतनी तेज' न हो जाए कि साम्राज्यवादियों के साथ-साथ

6- डा0 ताराचन्द, भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का इतिहास, द्वितीय खण्ड, पृ0 380

उनके विशेषाधिकार समाप्त कर दिए जाएँ ।[7]

दादा भाई नौरोजी आदि इस बीच के ऐसे कई राष्ट्रवादी नेता थे जिन्होंने विस्तार से ब्रिटिश कालीन भारत के आर्थिक पहलू का विश्लेषण करके यह बतलाया कि किस प्रकार देश का अंग्रेजों द्वारा शोषण हो रहा है । फिर भी ब्रिटिश सरकार की 'प्रगतिशील' (?) नीतियों का समर्थन बराबर करते थे और भारत का हित अंग्रेजी साम्राज्य की अधीनता में ही मानते थे ।

1885 से 1905 तक उदारपंथी, कांग्रेस पर छाए रहे । ब्रिटिश जनतंत्र में उनकी असीम श्रद्धा थी । अंग्रेजी साम्राज्य के अन्तर्गत ही से भारत के कल्याण की बात सोचते थे । इनके अनुसार अंग्रेजी साम्राज्य की छत्रछाया में रहकर ही भारत स्वतंत्र, प्रगतिशील, प्रजातांत्रिक, राष्ट्रीय मूल्यों की प्राप्ति कर सकता है । जस्टिस रानाडे ने कहा था कि 'भारत में अंग्रेजी शासन की सार्थकता यह है कि बड़े पैमाने पर नागरिक और सार्वजनिक क्रियाकलापों के क्षेत्र में, राजनैतिक शिक्षा देना इसका दैवी लक्ष्य और विधान है और यह इसके लिए सुयोग्य भी है ।[8]

भारतीय उदारवादियों ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद को न केवल राजनैतिक क्षेत्र में जनतांत्रिक मूल्यों की स्थापना में ही अपना शिक्षक माना अपितु उन्होंने उसे सांस्कृतिक तथा सामाजिक पिछड़ेपन को दूर करने वाला तथा जनता का पथ-प्रदर्शक भी कहा था । इसलिए इस काल के साहित्य में जो राजभक्ति की गंध है उसके पीछे कांग्रेस की यही उदारवादी नीति थी ।

अंग्रेजी साम्राज्य में उदारवादियों की आस्था विश्वास और राजभक्ति प्रदर्शन के बावजूद भी अंग्रेजी सरकार ने इनकी प्रार्थनाओं पर विशेष ध्यान नहीं दिया । इनकी आशा

7- रजनीपाम दत्त, आज का भारत, पृ0 328

8- बिपन चंद्र, स्वतंत्रता संग्राम, पृ0 53

निराशा में बदली, आस्था और विश्वास के सामने प्रश्न-चिन्ह लगा । नरमदली नेता गोखले को भी अपने जीवन के अंतिम दिनों में कहना पड़ा, '' नौकरशाही साफ-साफ स्वार्थी बनती जा रही है और वह राष्ट्र की आशाओं का खुलकर विरोध कर रही है । पहले वह ऐसी नहीं थी । ''

धीरे-धीरे अंग्रेजी साम्राज्यवाद के खिलाफ जन-आक्रोश और बढ़ने लगा और पुनरुत्थानवादियों के दर्शन से लैस गरमदली नेता तिलक, अरविन्द, लाला लाजपदराय आदि सामने आए । तिलक जनता की शक्ति से परिचित थे । 1902 में पूना के अपने भाषण में जनता को साम्राज्यवाद के विरुद्ध खड़ा होने के लिए आह्वान किया – ''आपको यह समझ लेना चाहिए कि जिस ताकत के बूते पर भारत में अंग्रेज सरकार हुकूमत चलाती है, उसमें आप खुद एक बहुत बड़ा तत्व है । इस भीमकाय मशीन को बड़ी सुगमता से चलाने में आप स्नेहक यानी चिकनाई का काम कर रहे हैं । मैं मानता हूँ कि आप लोग कुचले हुए और उपेक्षित हैं, लेकिन आपको अपनी इस ताकत का एहसास होना चाहिए कि अगर आप चाहें तो प्रशासन की इस मशीन का चलना असंभव बना दे सकते है । यह आप ही लोग तो है, जो रेलों और तारघरों को चलाते है, यह आप ही लोग तो है, जो राजस्व वसूल करते और समझौता कराते है । दरअसल यह आप ही लोग हैं जो प्रशासन के हर काम को करते है – यद्यपि एक अधीनस्थ के रूप में । आपको सोचना होगा कि इस तरह खपते रहने के बजाय, क्या आप अपनी योग्यता को राष्ट्र के बेहतर हितों के लिए इस्तेमाल नहीं कर सकते । ''[9]

तिलक पहले राष्ट्रवादी थे, जिन्होंने 'स्वराज्य' की मांग की । '' स्वराज्य मेरा जन्म-सिद्ध अधिकार है और मैं उसे लेकर ही रहूँगा '' लेकिन उनके लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद

9- के० दामोदरन, भारतीय चिन्तन परम्परा, पृ० 412

JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY LIBRARY
TH-154
DISS
4(P,152)&aV,44;51N20 ← N0
15218

के आधिपत्य से मुक्ति एक धार्मिक कर्त्तव्य की तरह थी । उन्होंने हिन्दू धर्म के देवी-देवताओं को राष्ट्रीय संघर्ष के प्रतीक के रूप में अपनाया । जिससे साम्प्रदायिकता को बल मिला, जिसका परिणाम था मुस्लिम लीग (1906) की स्थापना, जो भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की सबसे दुःखपूर्ण स्थिति थी । रजनीपाम दत्त ने लिखा है कि ''इससे लाजिमी तौर पर आन्दोलन की वास्तविक प्रगति रुकती थी, आन्दोलन कमजोर पड़ता था और राजनैतिक चेतना कमजोर पड़ती थी । मुस्लिम जनता के एक बहुत बड़े भाग के राष्ट्रीय आन्दोलन से अलग रहने का एक कारण यह भी है कि हिन्दू धर्म पर इतना बल दिया जाता है।''10

उग्रवादी नेताओं की नीतियों का उज्ज्वल पक्ष अधिक उभरकर सामने आया । उन्नीसवीं सदी के अन्त में बेरोजगारी, महामारी, अकाल और उसके फलस्वरूप आर्थिक संकट ने जनता के मन में ब्रिटिश सरकार के प्रति असंतोष का वातावरण पैदा कर दिया था । लार्ड कर्जन द्वारा बरती गई दमनकारी नीति ने इस असंतोष को चरम सीमा पर पहुँचा दिया । जनता उदारवादियों की 'प्रार्थना' और 'सहयोग' वाली नीति से असंतुष्ट थी । तिलक, अरविन्द, लाला लाजपतराय आदि गरम दल के नेताओं ने जनता की इस आशा - आकांक्षा को पहचाना और उन्होंने साम्राज्यवाद से संबंध विच्छेद के लिए असहयोग, बहिष्कार, स्वदेशी तथा राष्ट्रीय शिक्षा जैसे बहु आयामी कार्यक्रम की घोषणा की । अरविंदघोष ने 'वन्देमातरम्' में लिखा था कि ''स्वदेशी, बहिष्कार, असहयोग और राष्ट्रीय शिक्षा के लिए अगर अलग- अलग और केवल उनके ही वास्ते आन्दोलन चलाया गया, तो निश्चिय ही वह असफल होगा । किन्तु एक सुसंगठित स्वतंत्रता को प्राप्त करने के एक ही सुसम्बद्ध प्रयत्न के रूप में यह समय का सबसे बड़ा तकाजा है । ये तो स्वराज्य के संघटक अंग मात्र

10- रजनीपाम दत्त, भारत, वर्तमान और भावी, पृ0 136

है । स्वराज्य इन सबको एकसाथ मिलाकर और एक में समन्वित करने से बनता है ।"[11]

जो आन्दोलन पहले शिक्षित तथा उच्च वर्ग तक ही सीमित था तिलक आदि उग्रवादियों ने उसे जनसामान्य के बीच लाकर खड़ा कर दिया । "बीसवीं सदी के प्रारंभ में खासकर बंगाल में शिक्षित लोगों के बीच बेकारी काफी बढ़ गई थी । यह अनुभव सिद्ध था कि ब्रिटिश सरकार की सहायता से लाए गए मंद्धिम क्रमिक विकास का सिद्धान्त और महज अर्जियों तथा भाषणों का तरीका असफल रहा था, इसलिए ये बेकार शिक्षित नौजवान नरम दल से विमुख होकर नए दल की ओर झुके - - - - - - । नए राष्ट्रवाद को मध्यवर्ग से सामाजिक समर्थन मिला । भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन पहले उच्चवर्गीय शिक्षित समाज और व्यापारियों के बुर्जुआजी के कुछ हिस्सों तक ही सीमित था लेकिन 1905 के बाद इस आन्दोलन का सामाजिक आधार अधिक व्यापक हुआ और उसमें निम्न मध्यवर्गीय लोग भी आए ।"[12]

इसी समय विश्व रंगमंच पर कुछ ऐसी घटनाएं घटित हुई जिन्होंने भारतीय जनता में आत्मविश्वास तथा संघर्ष की शक्ति पैदा की । इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना जापान के हाथों जारशाही रूस की पराजय थी । एशिया के एक देश के द्वारा एक यूरोपीय महाशक्ति की पराजय ने एशिया के दबे-कुचले लोगों में यह आत्मविश्वास पैदा किया कि अपनी तमाम वैज्ञानिक दक्षता के बावजूद पश्चिम के लोग एशिया के अपराजेय विधाता नहीं है । 1905 की पहली रूसी क्रांति जिसने जारशाही साम्राज्यवाद की जड़ें हिला दी थीं के समाचार ने भी आत्म-विश्वास की इस धारणा को और पुष्ट किया । भारतीय नेताओं ने ही नहीं अपितु हिन्दी के साहित्यकारों ने इन अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का हृदय से स्वागत किया और भारतवासियों को जापान आदि देशों से प्रेरणा लेने के लिए प्रेरित किया ।

11- के० दामोदरन, भारतीय चिन्तन परम्परा, पृ० 413

12- ऐ० आर० देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृ० 227

'फूट डालो और राज्य करो' की नीति के आधार पर अंग्रेजों ने बंगाल का विभाजन किया । इस घटना ने राष्ट्रीय आन्दोलन की आग में घी का काम किया । इससे बंगाली देशभक्तों का खून खौल उठा और उन्होंने जो आन्दोलन चलाया वह देश के एक-छोर से दूसरे छोर तक फैल गया । बहिष्कार एक राजनैतिक अस्त्र बन गया । सरस्वती में बहिष्कार और स्वदेशी पर अनेक लेख तथा टिप्पणियाँ छपीं । भारत के मजदूर वर्ग ने पहली बार राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया । सरकार को जनशक्ति के दबाव के कारण घुटने टेकने पड़े और 1911 में बंग-भंग के निर्णय को निरस्त कर दिया गया ।

उदारपंथियों और उग्रवादी नेताओं की नीति तथा कार्यपद्धति के कारण 1907 में स्पष्टतः दोनों के रास्ते अलग-अलग हो गये । कांग्रेस दो गुटों में बँट गई । जवाहरलाल नेहरू ने 'हिन्दुस्तान की कहानी' में लिखा है — ''हवा में क्रांतिकारी नारे गूँज रहे थे । लोगों में जोश था । टकराव को टाला भी जा सकता था । इस टकराव को टालने के इरादे से कांग्रेस के बुजुर्ग नेता दादा भाई नौरोजी, जिन्हें देश के सब लोग इज्जत की नजर से देखते थे और जो देश के पिता कहलाते थे, एकान्तवास छोड़कर बाहर निकल आए । किन्तु यह शांतिपूर्ण स्थिति कुछ दिन तक ही रही । और 1907 में जब टकराव हुआ तो उसके फलस्वरूप पुराने उदारपंथी दल की अधूरी तौर से विजय हुई । किन्तु उनकी विजय का कारण संगठन पर नियन्त्रण और कांग्रेस के मतदान के अधिकार का सीमित होना था । इसमें कोई संदेह नहीं कि भारत में राजनैतिक रूप से अधिकांश जागरूक लोग तिलक और उनके दल का समर्थन करते थे । अब कांग्रेस का महत्व काफी घट गया और उसके क्रियाकलाप भी दूसरी दिशाओं में प्रवृत्त हुए । बंगाल में आतंकवादी कार्रवाइयाँ होने लगीं । रूस और आयरलैंड के क्रांतिकारियों के जीवन से प्रभावित होकर उन्हें 'आदर्श' माना जाने लगा तथा बहुत से लोग उनका अनुसरण करने लगे ।''[13]

13- जवाहरलाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी, पृ0 482

अंग्रेजी सरकार की फूट डालने वाली नीति सफल हुई, कांग्रेस का विभाजन हुआ । अंग्रेजी सरकार का हौसला बढ़ा उसने उग्रवादियों के आन्दोलन को कुचलने के लिए कदम उठाये 1907 में इस राजद्रोहात्मक सभा (सेडीशन मीटिंगस) ऐक्ट और 1910 में इंडियन प्रेस ऐक्ट पारित किया । बंगाल के 'बन्देमातरम्' , 'जुगांतर' आदि कई अखबार सरकार द्वारा बन्द कर दिये गए । हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं पर भी इस दमन-नीति का असर पड़ा । यह भी एक कारण है कि 'सरस्वती' में राजनैतिक चेतना को उभारने वाले लेख सीधे-सीधे नहीं लिखे जाते थे । बहुत से उग्रवादी नेता - जिनमें तिलक, अरविन्द, पी0सी0 दास जैसे नेता शामिल थे, राजद्रोह का आरोप लगाकर उन्हें गिरफ्तार किया गया । जनता अपने प्रिय नेताओं की गिरफ्तारी और उनपर चलाए गए मुकदमों के खिलाफ विद्रोह के लिए खड़ी हुई । देश भर में जहां तहां हड़तालें हुई और प्रदर्शन हुए । राष्ट्रीय आन्दोलन में जनता इन कार्यों से सक्रिय होकर जुड़ गयी । लेनिन ने उस समय लिखा था, ''भारत की जनता अब अपने लेखकों और राजनैतिक नेताओं की सुरक्षा के लिए उठ खड़ी होने लगी है । ब्रिटिश गीदड़ों ने भारत के जनतांत्रिक नेता तिलक के खिलाफ जो फैसला सुनाया है (उन्हें दीर्घकाल के लिए देश से निर्वासित किया गया है । ब्रिटिश हाउस आव कामन्स में उठाए गए एक सवाल के जबाव से पता चलता है कि जब भारतीय ज्यूरी ने उन्हें बरी करने के पक्ष में मत दिया तो ब्रिटिश ज्यूरी के बोट लेकर मौजूदा फैसला सुनाया गया) एक जनतांत्रिक नेता के खिलाफ धन कुबेरों के चाटुकारों का यह जो प्रतिशोधनपूर्ण फैसला है, उसके खिलाफ सड़कों पर प्रदर्शन होने लगे और बम्बई में हड़ताल हुई ।''[14]

जैसे-जैसे अंग्रेजी सरकार ने इस आन्दोलन को कुचलने की चेष्टा की वैसे-वैसे वह आन्दोलन और जोर पकड़ता चला गया । इसलिए सरकार ने कुछ राजनैतिक सुधार करके

14- के0 दामोदरन, भारतीय चिन्तन परम्परा, पृ0 408

राष्ट्रवादियों का मन जीतने की कोशिश की । मार्लिमिंटो सुधार के जरिये सरकार ने केन्द्रीय और प्रान्तीय विधायक परिषदों में कुछ निर्वाचित सदस्यों का प्रावधान किया, यद्यपि ये परिषदें केवल अपनी राय ही दे सकती थीं, इनके पास कोई निर्णायक शक्ति नहीं थी ।

जहां उग्रवादियों ने इन सुधारों को असंतोषजनक माना, वहीं नरमदल वालों ने इनका हृदय से स्वागत किया । इन सुधारों से नरमदली नेताओं की अंग्रेजी साम्राज्यवाद के प्रति आस्था और विश्वास पुनः जाग्रत हुआ, जो ब्रिटिश सरकार की पूर्ववर्ती नीति के कारण समाप्त हो चुका था । 1911 में बंग-विभाजन की घोषणा के निरस्त होने से यह आस्था और पुष्ट हुई । इस समय कांग्रेस की लगाम नरमदली नेताओं के हाथ में थी । कांग्रेस ने यह ऐलान किया कि, 'इस समय हरेक भारतीय का हृदय ब्रिटिश सरकार के प्रति श्रद्धा और भक्ति से ओतप्रोत है, और ब्रिटिश राजनीतिज्ञों में हमारा विश्वास फिर से दृढ़ हो गया है और हम उनके अत्यन्त कृतज्ञ हैं ।'..15

'सरस्वती' ने कांग्रेस की इस नीति का स्वागत किया और उसके लेखकों ने ब्रिटिश साम्राज्य में अपनी आस्था प्रकट करते हुए लिखा –

''ब्रिटिश राज्य से भी न हमें आशा कुछ कम है ;
उन्नति का पथ खुला और बहुधा वह सम है ।
अनाचार कोई न किसी पर करने पाता ;
बहुत तरह आराम हमें पहुंचा जाता ।।

इतना ही नहीं, अंग्रेजों ने भारतीयों के ज्ञान-चक्षुओं को खोला भी है –

चिर निद्रा से ब्रिटिश राज्य ने हमें जगाया ।
धैर्य दिया है और भूरि भय दूर भगाया ।

15- रजनीपाम दत्त, भारत, वर्तमान और भावी, पृ0 140

अवनति से फिर हमें समुन्नति - तत्व सिखाया ;
हम कृतज्ञ है, हमें हमारा रूप दिखाया ।[16]

1914 में प्रथम विश्व युद्ध प्रारंभ हुआ । कांग्रेस के उदारवादी गुट ने राजभक्ति दिखाने के लिए, इस युद्ध में अंग्रेजी साम्राज्यवाद की तन, मन, धन से सहायता की भारतीय जनता से अपील की । गांधी जी ने घूम-घूम कर अंग्रेजी सेना में भारतीय जवानों की भर्ती कराई । भारतीय जनता को पुरस्कार के रूप में भले ही कुछ हाथ न लगा हो लेकिन भारतीय सेना की धाक एशिया और यूरोप वालों के मन में जम गई । पट्टाभि सीतारामय्या ने लिखा है, '' इसी प्रकार गत महायुद्ध के जमाने में, 1914 की बड़ाके की सर्दी में, फ्लैन्डर्स और फ्रांस के मैदानों में, जर्मन सेनाओं के आक्रमणों का भारतीय फौजों ने जिस अद्भुत वीरता, धैर्य, और सहनशीलता के साथ सफलतापूर्वक मुकाबला किया उससे एशिया और यूरोपीय देशों में भारतवासियों की खासी धाक बैठ गई थी । पश्चिमी देशों की दृष्टि में तो वे इतने ऊंचे उठ गए थे जितने अभी तक कभी नहीं थे । भारतीय फौजों द्वारा युद्ध में की गई सेवाओं की इस सराहना का भारतवासियों के मस्तिष्क पर जो स्वाभाविक असर पड़ा वह यह था कि कुछ भारतवासियों के हृदय में पुरस्कार की और कुछ के हृदय में अपने अधिकारों की भावना जाग्रत हो गयी थी ।''[17]

लेकिन युद्ध की समाप्ति के बाद भारतवासियों को पुरस्कार के बदले मिला रौलेट ऐक्ट और जालियांवाला बाग का नर-संहार । प्रथम विश्वयुद्ध की घटना ने सरस्वती से संबद्ध हिन्दी के साहित्यकारों को प्रभावित नहीं किया । गुलेरी जी की 'उसने कहा था' (सरस्वती 1915) कहानी से युद्ध के प्रति हिन्दी साहित्यकारों के मिजाज का पता सहज

16- मैथिलीशरण गुप्त, सरस्वती, फरवरी 1911 का अंक

17- पट्टाभि सीतारामय्या, कांग्रेस का इतिहास, पृ0 98

ही लगाया जा सकता । लहनासिंह के शौर्य के माध्यम से कहानीकार ने भारतीय फौज की ताकत को दिखाया है, जिसके सामने शक्तिशाली दुश्मन भी घुटने टेकने को बाध्य हो जाता है । कहानी में देशभक्ति या राजभक्ति की गंध तक नहीं । युद्ध के प्रति यह तटस्थता का भाव प्रायः 'सरस्वती' के सभी लेखकों का रहा है ।

1915 ई० में गोखले का देहान्त हो गया । इसी के साथ उग्र दल का प्रभाव कांग्रेस में भी बढ़ने लगा । तिलक ने 1916 में एनी बेसेन्ट के साथ मिलकर 'होम रूल लीग' की स्थापना की और अपने ओजस्वी भाषणों तथा लेखों द्वारा अलसाई हुई जनता में राजनैतिक स्फूर्ति भरने का प्रयास किया । तिलक के विचारों ने जन सामान्य को प्रभावित किया । वल्लभ जी के शब्दों में जनता खुलेआम कहने लगी –

''खुला यह कहते हैं आज हम, स्वराज्य लेंगे, स्वराज्य लेंगे ;
करेंगे आवाज अब न मध्यम, स्वराज्य लेंगे, स्वराज्य लेंगे ।[18] ''

1917 की रूसी राज्यक्रांति ने सभी पराधीन देशों की जनता में स्वाधीनता की भावना को और प्रबल कर दिया । भारतीय जनता भी इससे अछूती न रह सकी । रजनीपाम दत्त ने लिखा है - '' इसमें संदेह नहीं कि 1917 के बाद के वर्षों में भारत में राजनैतिक आन्दोलन थोड़े से लोगों की चीज न रहकर जनता का आन्दोलन बन गया ।''[19]

'युद्ध काल के चार वर्षों में कांग्रेस के ऊपरी हिस्सों ने अपनी राजभक्ति का खूब एलान किया । युद्ध के समर्थन में प्रस्ताव पास किए । यहाँ तक कि युद्ध समाप्ति के बाद 1918 में दिल्ली में जो अधिवेशन हुआ, उसमें भी अंग्रेज सम्राट के प्रति वफादारी का एलान किया गया और उसे 'युद्ध के सफलता पूर्वक समाप्त हो जाने' पर बधाई दी ।

लेकिन जनता में साम्राज्यवाद के प्रति असंतोष था । वह कांग्रेस की राजभक्ति की नीति से असंतुष्ट थी । वह झुक कर गुजरने के लिए उतारू थी । इसके कारणों पर

18- सरस्वती, जुलाई 1916

19- रजनीपामदत्त, भारत, वर्तमान और भावी, पृ० 140

प्रकाश डालते हुए रजनीपामदत्त ने लिखा है –

'युद्ध के कारण जनता की हालत बहुत खराब हो गई थी । युद्ध का खर्च चलाने के लिए भारत की गरीब जनता से इतना कसकर रुपया वसूल किया गया था कि उसकी कमर टूट गयी थी । महँगाई की मार और अंधाधुंध नफाखोरी ने लोगों को तबाह और बरबाद कर दिया था । यह इसी का नतीजा था कि युद्ध समाप्त होने पर भारत में काले बुखार की ऐसी महामारी फैली जैसी पहले कभी न आई थी - - - - जनता की बढ़ती हुई बैचेनी की एक झलक पंजाब के गदर आन्दोलन और फौजों की बगावतों के रूप में दिखाई दी सिर्फ बेरहमी से दमन किया गया ।'[20]

सरकार ने जन आक्रोश को दबाने के लिए दुहरी नीति काम में ली । एक ओर तो उसने रौलेट एक्ट लागू किया, तो दूसरी ओर मौंटेग्यु - चेम्सफोर्ड रिपोर्ट तैयार की । नरमदली नेताओं को छोड़कर , सभी ने उसे 'निराशापूर्ण और असंतोषजनक' कहकर अंग्रेजी सरकार की भर्त्सना की । गांधी जी ने इसके विरुद्ध सत्याग्रह का शंखनाद करने की ठानी । जनता से 6 अप्रैल को हड़ताल करने की अपील की गई । जनता ने इतने उत्साह से अपील को कार्यान्वित किया कि खुद अपील करने वाले हक्के-बक्के रह गए । देश के अनेक भागों में हड़तालें हुईं और जुलूस निकले । सरकार ने इसके दमन में कोई कसर न छोड़ी । मार्शलला लगाए गए तथा अनेकों अमानुषीय उपायों का प्रयोग किया गया । जलियांवाला नरसंहारी काण्ड हुआ । साहित्यकारों ने इसके विरोध में खूब अपनी लेखनी चलाई ।

गांधी जी ने राष्ट्रीय आन्दोलन को नया मोड़ दिया । तिलक की दृष्टि शहर की ओर थी, गांधी जी ने गांव की ओर दृष्टि दौड़ाई । भारतीय जनता का बहुत महत्वपूर्ण

20- रजनीपाम दत्त, भारत वर्तमान और भावी, पृ० 142

तथा बड़ा हिस्सा - किसान - इस राष्ट्रीय संघर्ष से अछूता पड़ा था । गांधी जी ने किसान को राष्ट्रीय आन्दोलन का अंग बनाया । उन्होंने आन्दोलन की आग को गांव-गांव में पहुंचा दिया । कांग्रेस जो राष्ट्रीय संघर्ष की एकमात्र संस्था थी, अब सम्पूर्ण भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व करती थी । जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है – '' कांग्रेस में गांधीजी पहली बार दाखिल हुए और फौरन ही उस संस्था के संविधान में पूरी तरह तब्दीली आई । उन्होंने कांग्रेस को एक लोकतंत्री और लोक संगठन बना दिया । वैसे तो पहले भी वह लोकतंत्री थी, लेकिन पहले उसके मतदाताओं का क्षेत्र संकुचित था और वह केवल बड़े लोगों तक ही सीमित थी । अब उसमें किसान भी आए और अपनी नई शक्ल में अब वह किसानों की एक बहुत बड़ी संख्या मालूम पड़ने लगी और उसमें मध्यम वर्ग के लोगों का, हालांकि उनकी तादात थोड़ी थी काफी जोर था । कांग्रेस का यह खेतिहर - प्रधान स्वरूप बढ़ने वाला था । औद्योगिक मजदूर भी उसमें आए , - - - - ।''[21] हिन्दी में किसानों की समस्या को लेकर साहित्य की रचना की गई । किसान का जीवन उपन्यास (प्रेमचन्द के यहां) और काव्य का विषय बन गया ।

—

21- जवाहरलाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी, पृ० 49।

अध्याय - 3

राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति 'सरस्वती' का दृष्टिकोण

भारतेन्दु हिन्दी भाषी प्रान्तों में होने वाले राष्ट्रीय जागरण के पहले साहित्यिक नेता कहे जा सकते है । उन्होंने हिन्दी-साहित्य को 'जबदी' हुई मनोवृत्ति से निकालकर, उसका संबंध राष्ट्रीय स्वाधीनता की समस्याओं से जोड़कर उसे आधुनिक भाव-बोध से सम्पन्न किया । उपनिवेशवादी नीतियों का पर्दाफाश करके उन्होंने जन-सामान्य की राजनैतिक चेतना को उभारने में मदद की । स्वदेशी भाषा (हिन्दी) की उन्नति और स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार का मंत्र देकर उन्होंने उपनिवेशवाद की जड़ों में मट्ठा डालने का काम किया । उपनिवेशवाद की जड़ों को खाद और पानी देकर मजबूत करने वाले स्वार्थी सामंतों की भी उन्होंने खूब खबर ली ।

भारतेन्दु इस स्वाधीनता संघर्ष में अकेले नहीं थे उनके साथ लेखकों का एक बहुत बड़ा मंडल था । जिन्होंने पत्रकारिता के द्वारा हिन्दी-भाषी जनता सुसुप्तावस्था से निकालकर स्वाधीनता संघर्ष के लिए तैयार किया था । भारतेन्दु युग का पूरा साहित्य स्वाधीनता की लड़ाई का साहित्य है । इसलिए वह राष्ट्रीय साहित्य कहलाने का अधिकारी है ।

इसी पृष्ठभूमि में इंडियन प्रेस प्रयाग से प्रकाशित होने वाली सचित्र मासिक पत्रिका 'सरस्वती' का प्रकाशन (1900 ई0) शुरु होता है । चूंकि यह उस युग की हिन्दी भाषा और साहित्य की प्रतिनिधि पत्रिका थी, इसलिए हिन्दी-भाषी प्रान्तों में चलने वाले स्वाधीनता संघर्ष के प्रति इस पत्रिका के रवैये को जानना इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य है ।

प्रायः कहा जाता है (ठीक भी है) कि भारतेन्दु युग के साहित्य की विकास-परम्परा को 'सरस्वती' पत्रिका में देखा जा सकता है, लेकिन यह सब होते हुए भी

भारतेन्दु मण्डल के लेखक 'सरस्वती' में अपनी रचनाएं नहीं छपवाते थे । वे 'सरस्वती' के प्रकाशन काल से ही उससे अलग बने रहे । इसका कारण 'सरस्वती' की नीति में खोजा जा सकता है । इस पत्रिका का जन्म 'ब्रिटिश सिंह' की छत्रछाया में हुआ और यह उसकी न्यायप्रियता और श्रेष्ठता को मानकर आगे बढ़ी ।[1] जबकि भारतेन्दु- युग के लेखक उग्र रूप से साम्राज्यवाद की नीतियों तथा कार्यकलापों का खुलकर विरोध कर रहे थे । यही कारण था कि 'सरस्वती' से भारतेन्दु युग के लेखक अलग रहे ।

जिस समय राष्ट्रीय आन्दोलन जनतांत्रिक मूल्यों की स्थापना के लिए जन-समुदाय के बहुत बड़े भाग को साथ लेकर आगे बढ़ रहा था, तब 'सरस्वती' पत्रिका उस छोटे-से वर्ग की इच्छा-आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व कर रही थी जो अंग्रेजी राज्य की न्यायप्रियता और श्रेष्ठता का कायल था । इस वर्ग ने 'ब्रिटिश सिंह' की छत्रछाया में ही भारतीय जन-जीवन के सर्वांगीण विकास, उन्नति और प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना की बात की । 'सरस्वती' के प्रारंभिक वर्षों में यह दृष्टि स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है । पत्रिका के संपादक बाबू श्याम सुन्दरदास ने अंग्रेजी राज्य में हुई भारत की उन्नति और विकास की चर्चा की है –

''ब्रिटिश सिंह की अधीनता में देश में शांति फैली, रेल, तार, और पोस्ट आफिसों का प्रचार हुआ । स्थान-स्थान में विश्वविद्यालय और विद्यालय स्थापित हुए ; सारांश यह है कि राजनैतिक रीति पर इस देश की मानो काया ही पलट गई । पाश्चात्य विद्या, कला-कौशल, और सभ्यता, ने देश का रूप ही बदल दिया ।''[2]

1- ''ब्रिटिश सिंह की अधीनता में देश में शांति फैली, रेल, तार और पोस्ट आफिसों का प्रचार हुआ - - - - -''। (सरस्वती, जनवरी 1901, भूमिका)

2- सम्पादकीय टिप्पणी, 'सरस्वती,' जनवरी 1901

अगस्त 1906, की 'सरस्वती' में पंडित बालकृष्ण भट्ट का परिचय छपा है। जिसमें आचार्य द्विवेदी लिखते हैं, ''भट्ट जी से हमारी प्रार्थना है। वह यह है कि समय के रंग-ढंग को देखकर उन्हें अपने लिखने का तर्ज अब कुछ बदल देना चाहिए और जिन विषयों पर वे अक्सर लिखा करते है उन्हें भी परिवर्तन करना चाहिए।''

अंग्रेजी साम्राज्य के प्रति 'सरस्वती' के लेखकों की भक्ति का स्वर 1905 तक स्पष्ट सुना जा सकता है। लेकिन बाद के वर्षों में धीरे-धीरे कम होता जाता है। जनवरी, 1907 की सरस्वती में रायदेवी प्रसाद की 'प्रदर्शनी व्याख्यान भूमिका' कविता छपी है। इस कविता में कवि ने अंग्रेजी साम्राज्य की छत्रछाया में भारत की उन्नति लेखा प्रस्तुत किया है –

''सड़कें, नहरें, तार, शफाखाने, अरु थाने ;
रेल, अदालत, मिलें, मदरसे भी मनमाने।
उस पर भी है धर्म तिजारत की आजादी
है दिल से मंजूर रिआया की दिलशादी ।
वह कई तरफ तैयार है भारत के उद्धार को ;
फिर करते बदनाम हम किस मुंह से सरकार को।

वस्तुतः यातायात की सुविधा, शिक्षा का प्रसार, लघु उद्योगों की स्थापना के पीछे अंग्रेजी सरकार की एक चाल थी। यह विकास सरकार ने भारत की उन्नति के लिए नहीं किया था बल्कि राष्ट्रीय आन्दोलन को शांत करने के लिए 'विकास' के कुछ टुकड़े भारतीय जनता के सामने फेंके थे। दूसरे इन कार्यों में भी अंग्रेजी सरकार के कुछ निजी स्वार्थ थे। अपने व्यापार-वाणिज्य को विकसित करने, भारतीय कच्चे माल को विलायत भेजने और वहां से तैयार माल को भारत के कोने-कोने में खपाने के लिए विकास किया था।

'सरस्वती' के लेखक प्रारंभ में अंग्रेजों की इस कलपूर्ण चाल से परिचित नहीं थे । इसलिए लेखकों ने अंग्रेजी-साम्राज्य के गुणगान में लेखनी खूब चलाई –

चिर-निद्रा से ब्रिटिश राज्य ने हमें जगाया ;
धर्म दिया है और भूरि भय दूर भगाया ।
अवनति से फिर हमें समुन्नति तत्व सिखलाया ;
हम कृतज्ञ है हमें हमारा रूप दिखाया । ''

इतना ही नहीं 'जो है उससे बेहतर' की आशा ब्रिटिश-साम्राज्य से की गई –

''ब्रिटिश राज्य से भी न हमें आशा कुछ कम है,
उन्नति का पथ खुला और बहुदा वह रूप है ।
अनाचार कोई न किसी पर करने पाता
बहुत तरह आराम हमें है पहुंचाया जाता ।[3]''

कवि की राजभक्ति में किसी प्रकार का संदेह नहीं करना चाहिए । वह कहता है कि हमें उसे प्रदर्शित करने की आवश्यकता नहीं, वह तो हमारी रग-रग में समाई हुई है –

''राजभक्त हमसा न विश्व में और कहीं है,
ऐसा कहना स्वयम् हमें भी उचित नहीं है ।
यह अवश्य हम लोग कहेंगे उच्च स्वर में,
है नृप ही यहाँ दूसरा ईश्वर सम है ।''[4]

3- मैथिलीशरण गुप्त, 'राज्याभिषेक' ; 'सरस्वती', दिसम्बर, 1911

4- वही

जब राजा ईश्वर के समान है । अपने अच्छे-बुरे कार्यों के लिए वह जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं हो सकता । इसलिए जनता को राजा के खिलाफ बगावत करने का अधिकार नहीं है –

''न कुना कहीं राज विद्रोह की,
प्रजा की प्रशंसा करना नहीं ।
भरे शोक संताप सिंधु में
कभी भी किसी को डुबोना नहीं ।''[5]

'सरस्वती' पत्रिका की दृष्टि का पता उसमें छपने वाले फोटो और जीवन परिचय से भी सहज ही लगाया जा सकता है । अधिकतर फोटो और जीवन परिचय ब्रिटिश शासकों और भारतीय सामंतों के छपे हैं, लेखकों, वैज्ञानिकों, भारतीय राजनैतिक नेताओं तथा प्राच्य- विद्याविशारदों को इसके बाद में स्थान मिला है ।

राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में लार्ड कर्जन अपने काले कानून तथा राजनैतिक कुचक्रों के कारण जाने जाते हैं । लेकिन मार्च 1900 ई० की 'सरस्वती' में उनके शासन काल में होने वाली देश की प्रगति का लेखा इस प्रकार दिया गया है –

''हम लोगों के सौभाग्य से इस दुःसमय में श्रीमान लार्ड कर्जन ऐसे प्रजावत्सल और विद्यारसिक शासक मिले हैं जिनके उत्तम प्रबंध से भारतवासी घोर अकाल और महामारी के कराल आक्रमण से रक्षा पाते हुए उत्तम शिक्षा और उचित न्याय प्राप्त कर रहे हैं ।''

12 दिसम्बर 1911 को जार्ज पंचम और महारानी मेरी का राज्याभिषेक देहली में हुआ । 'सरस्वती' ने इस उपलक्ष्य में कई लेख तथा कविता छापकर अपनी राजभक्ति का पूरा-पूरा परिचय दिया ।

5- नाथूराम शंकर शर्मा, 'सदुपदेश', 'सरस्वती,' अप्रैल 1911

दिसम्बर 1911 की सरस्वती में लोचन प्रसाद पाण्डेय की कविता 'सम्राट-स्वागत' छपी है । इसमें कवि, सम्राट जार्ज पंचम का स्वागत करते हुए, उनके गुणों का गान करता है –

''स्वागत - स्वागत सम्राज्ञी-युत हे प्रिय पंचम जार्ज नरेश ।
स्वागत श्वेत द्वीप पंकज, भारत प्रजापुंज - हृदयेश ।
स्वागत प्रबल - प्रताप निकेतन प्रजा परमप्रिय, प्रभुतागार ।
भूमण्डल के पंचमांश के अधिपति न्याय नीति अवतार ।''

इतना ही नहीं आपके भारतागमन से जनता के भाग्य का सूर्योदय हुआ है । जनता अपने भाग्य को बार-बार सराह रही है –

''धन्य-धन्य यह अवसर शुभमय, धन्य भाग्य भारत का आज
धन्य आज का दिवस, धन्य है आर्य भूमि का प्रजासमाज ।'

फरवरी 1902, की 'सरस्वती' में पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी की कविता 'भारत की परमेश्वर से प्रार्थना' छपी है । इसमें कवि ईश्वर से सप्तम् एडवर्ड के चिरायु होने की प्रार्थना करता है –

हे एक और विनती तुमसे हमारी,
सो भी करो सकल हे प्रभु पापहारी ।
ये सातवें नृप नए एडवर्ड देव
रानी - समेत चिरजीव रहें सदैव ।।

'सरस्वती' पत्रिका के प्रारंभिक अंकों में उन देशी राजा-महाराजाओं तथा सामंतों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है जिन्होंने अपनी सेवाओं से ब्रिटिश साम्राज्य की नींव को मजबूत बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी ।

जनवरी 1905 महाराजा रघुराज सिंहजू देव, जी सी0 एस0 आई0 का फोटो सहित, परिचयात्मक जीवन - चरित छपा है । इस लेख में महाराजा के उन कार्यों की प्रशंसा की गई है जो उन्होंने 1857 के विद्रोह को दबाने के लिए किए थे –

''संवत् 1913 के अन्त में, श्रीमान् ने जगदीश दर्शन के लिए, पुरी की ओर विलासपुर और सम्भलपुर की तरफ से, सकुटुम्ब प्रस्तान किया । तब आप पुरी ही में थे, भारत गवर्नमेंट का खरीता पहुंचा कि हिन्दुस्तान में बलवा हो गया । श्रीमान् जी से सलाह लेने के लिए बड़े लाट ने इन्हें कलकत्ता बुलवाया । ----- यह करके भारत गवर्नमेंट की सहायता के लिए, स्वयम् अपनी सेना और तोपें इत्यादि लेकर, मेहर राज्य पर, जहाँ कि उस समय बहुत बागी थे, आप चढ़ गए । शीघ्र ही वहाँ के किले को श्रीमान् ने तोड़ दिया और बागियों को तितर-बितर कर दिया । इस प्रत्युपकार में गवर्नमेंट की ओर से सोहागपुर का इलाका जो अब तक राज्य में शामिल है, मिला । इससे श्रीमान् की दूरदर्शिता और ब्रिटिश राज्य के प्रति भक्ति पूर्णतः झलकती है ।''

इनकी राजभक्ति का सबसे बड़ा सबूत यह है कि आपके कोई उत्तराधिकारी न होने पर, कलकत्ते जाकर 1875 में अपना समस्त राज्य ब्रिटिश गवर्नमेंट के अधीन स्वेच्छा से कर दिया । लेखक ने उनके इस कार्य की प्रशंसा की है ।

देशी राजा-महाराजाओं की ब्रिटिश भक्ति का एक नमूना और देखिए जो राजा-महाराजा तन, मन, धन से ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ों को मजबूत करने में लगे हुए थे । 'सरस्वती' ने ऐसे सामंतों की खूब प्रशंसा की है । हैदराबाद के निजाम की राजभक्ति के बारे में लिखा है -

''निजाम साहब अंग्रेजी गवर्नमेंट के पक्के मित्र थे उन्होंने संकटों के समय गवर्नमेंट को जो सहायता दी उससे उक्त बात अच्छी तरह प्रमाणित हो जाती है । 1885

में जब यह भय था कि भारत पर रूस चढ़ाई करेगा, तब निजाम ने ब्रिटिश सरकार को सहायता देने की इच्छा प्रकट की थी । घोर युद्ध के समय और ईजिप्ट की अराजकता के समय भी उन्होंने सहायता देने का निश्चिय किया था । सन् 1887 ई0 में उन्होंने लार्ड डफरिन को यह लिखा था कि हम भारत की वायव्य सीमा की रक्षा के लिए तीन वर्ष तक प्रति वर्ष 20 लाख रुपये दे सकते है । तभी से 'इम्पीरियल सरविस ट्रूप्स' की उत्पत्ति हुई और परचक्र से भारत की रक्षा करने के लिए देशी राज्यों से सहायता मिलने का मार्ग खुला ।''[6]

'सरस्वती' में भारतीय इतिहास के उन देशभक्त वीर-वीरांगनाओं तथा राजा-महाराजाओं का चरित साम्राज्यवादी नीति के अनुरूप छापा है, जिन्होंने अपनी मातृभूमि के लिए अपने प्राणों की भी बाजी लगा दी । इसलिए रामबक्ष का यह कथन सही है कि –

''सरस्वती' पत्रिका में अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष करने वाले भारतीय राजाओं, नवाबों और क्रांतिकारियों की आलोचना की गई है । और इस संदर्भ में ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा दिए गए तथ्यों तथा निर्णयों को सही मानकर उनका प्रचार किया गया है ।''[7]

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जनवरी-फरवरी के अंक में, सतारा के पं0 दत्तात्रेय बलवन्त पारसनीय के द्वारा लिखित रानी लक्ष्मी बाई के जीवन चरित के आधार पर एक लेख लिखा । इस लेख में महारानी के अतुल पराक्रम, उसके अतुल धैर्य और शौर्य की प्रशंसा की गई है । प्रशंसा का कारण यह था कि '' 1857 के बलवे में अंग्रेजों का जो बध झाँसी में हुआ था उससे रानी लक्ष्मी बाई का कुछ भी संबंध न था ।''

6- लक्ष्मीधर वाजपेयी, 'हैदराबाद के परलोकवासी निजाम', 'सरस्वती' अक्टूबर 1911

7- 'सरस्वती में संस्कृति', 'आलोचना,' जुलाई-सितम्बर 1977

इतना ही नहीं महारानी ने विद्रोहियों को कुचलने में सरकार की सहायता का आश्वासन भी दिया था ।[8] इस तथ्य की पुष्टि 'सरस्वती' में छपे और लेखों से भी की जा सकती है । अप्रैल 1904 के अंक में द्विवेदी जी ने 'शिवाजी और अंग्रेज' नाम का लेख लिखकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि शिवाजी ने ईस्ट इंडिया कम्पनी की नींव को भारत में, मजबूत करने में कोई कसर नहीं छोड़ी । 1857 के सेनानी तात्याटोपे और नाना साहब को 'नृशंस हत्यारा' तक कहा है ।[9]

इतना ही नहीं 'सरस्वती' प्रारंभ में अंग्रेजी साम्राज्य की विस्तार नीति का भी समर्थन करती हुई दिखाई देती है । जनवरी 1904 के अंक में द्विवेदी जी का 'अवध में अंग्रेजों का पहला इश्तहार' शीर्षक लेख छपा है । इस लेख का आधार लेफ्टिनेन्ट जनरल मेकल्यूड इनिसे की पुस्तक' गदर में लखनऊ और अवध' (

) है । इस लेख में विद्रोह के पहले अवध के नवाब वाजिदअली को गद्दी से उतार कर अवध पर ईस्ट इंडिया कम्पनी के कब्जे को उचित ठहराया गया है । कब्जे के औचित्य का आधार 1801 के संधिपत्र को दिया गया है ।

1885 से 1905 ई० तक के राष्ट्रीय आन्दोलन की बागडोर उदारपंथियों के हाथ में रही । उनकी सहयोग और राजभक्ति की असफलता ने उनका मोहभंग किया ।

8- ''विद्रोह के समय रानी साहब ने अंग्रेजों की सहायता ही की है । जून में जब विद्रोह के लक्षण दिखाई देने लगे तब एक दिन झांसी के डेप्यूटी कमिश्नर गार्ड साहब लक्ष्मी बाई से मिले और उनसे सहायता मांगी । लक्ष्मी बाई ने कहा कि यदि हम खुल्लम-खुल्ला आपकी सहायता करेंगी तो ये विद्रोही सिपाही हमारा घरबार सभी जला देंगे और हमको बहुत तंग करेंगे परन्तु जहां तक हो सकेगा हम आपकी सहायता करेंगी - - - - ।'' (फरवरी 1904 की 'सरस्वती', पृ0407)

9- 'सरस्वती' , अक्टूबर० 1904

अकाल, बेरोजगारी, महामारी आदि ने जनता के मन में असंतोष का वातावरण पैदा कर दिया था । लार्ड कर्जन के कुचक्रों ने जनता के इस असंतोष को और बढ़ावा दिया । इसी समय अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर कई घटनाएँ घटित हुई । जिसमें सबसे महत्वपूर्ण घटना थी जापान के हाथों रूस जैसे शक्ति-सम्पन्न देश की पराजय । इससे राष्ट्रीय आन्दोलन को बल मिला । लेकिन कांग्रेस अपनी दोहरी नीति पर डटी रही ।[10] जिसकी छाप 'सरस्वती' में 1905 के बाद स्पष्ट रूप से दिखाई देती है ।

पत्र-पत्रिकाएँ जन-चेतना को उभारने का सबसे सबल माध्यम है । भारतेन्दु युग के लेखकों ने पत्रकारिता के द्वारा अंग्रेजी साम्राज्य की शोषण नीति का पर्दाफाश किया । अंग्रेजी सरकार के काले कानूनों का खुलकर विरोध किया । जनता में राष्ट्रीय संघर्ष के लिए आत्मबल पैदा किया । सरकार ऐसी उग्रवादी विचारधारा वाले पत्रों पर बराबर नजर लगाये हुए थी । उसने उनके दमन में कोई कसर नहीं छोड़ी । भारतेन्दु और द्विवेदी युग के कई साहित्यकार इस दमन के शिकार हुए । कितने ही पत्रों की जमानत जब्त हुई । उनके सम्पादकों को कारावास की हवा खानी पड़ी ।[11] लेकिन फिर भी इन पत्रों की

10- ''एक तरफ तो कांग्रेस जन-आन्दोलन को खतरे से बचाने के लिए साम्राज्यवाद की और सहयोग को बढ़ाती थी, दूसरी तरफ राष्ट्रीय संघर्ष में जनता का नेतृत्व करती थी - - - ।'' रजनीपाम दत्त, आज का भारत, पृ० 328

11- '''पंजाबी' के सम्पादक श्री के०के० आथवले को उग्र पत्रिकारिता के लिए सजा हुई, 'हिन्दुस्तान' के सम्पादक श्री दीनानाथ को 5 वर्ष की कैद हुई, 'इंडिया' के सम्पादक लाला पिंडीदास को भी 5 वर्ष की सजा हुई, 'हिन्दी-प्रदीप' के सम्पादक पं०बालकृष्ण भट्ट और 'भारतमित्र' के सम्पादक बालमुकुन्द गुप्त को कई बार अदालत में पेश होना पड़ा । 'स्वराज'(1907) के एक के बाद एक आठ सम्पादकों को लम्बे कारावास की सजाएँ मिली ।'' (1857 के स्वाधीनता संग्राम का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, डा० भगवान दास माहोर, पृ० 125)

पुकार थी –

''लाख बाँधो तुम हमें जंजीर से,
वक्त पर निकलेंगे फिर भी तीर से ।''[12]

द्विवेदी जी पत्रकारिता के इन खतरों से परिचित थे इसलिए उन्होंने नम्र नीति का अनुसरण किया । जो नीति राजनैतिक क्षेत्र में पं० मदनमोहन मालवीय की थी, वही नीति साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र में द्विवेदी जी ने अपनाई । द्विवेदी जी ने राजभक्ति की आड़ लेकर जहाँ साम्राज्यवादी सरकार की कार्यपद्धति की आलोचना की है, वहीं देशभक्ति और स्वदेश प्रेम की बात की है । उनकी राजभक्ति औपचारिक थी । यह दोहरी नीति 'सरस्वती' में अन्त तक दिखाई देती है । उन्होंने अपने सम-सामयिक पत्रकार मित्रों को इसी समयानुकूल नीति का पालन करने की सलाह दी ।

अगस्त 1906 की 'सरस्वती' में पं० बालकृष्ण भट्ट के 'हिन्दी प्रदीप' पर लेख लिखते हुए द्विवेदी जी ने सरकार की तरफ से 'हिन्दी प्रदीप' को कैसी-कैसी बाधाओं का सामना करना पड़ा, इसका वर्णन है : '' सितम्बर 1877 से 'हिन्दी प्रदीप' निकलना शुरु हुआ । परन्तु 'सिर मुड़ाते ही ओले पड़े' की मसल खूब ही चरितार्थ हुई । उसी समय प्रेस ऐक्ट का जन्म हुआ । 'प्रदीप' में ऐसे कई लेख निकले कि वह स्थानीय कर्मचारियों की आँख का काँटा हो गया । साल में कई बार मजिस्ट्रेट साहब के यहाँ उसके मैनेजर और सम्पादक की तबली बराबर होती रही ।'' परिणाम यह हुआ 'हिन्दी प्रदीप' से संबंधित लोग किनारा कर गए । भट्ट जी ने उसका भार अपने ऊपर लिया । इसके लिए भट्ट जी के धैर्य, त्याग और तपस्या की उन्होंने प्रशंसा की है । परन्तु अन्त में उन्होंने भट्ट जी को सलाह देते हुए कहा है –

12- 'स्वराज्य' के मुख्य पृष्ठ पर छपने वाला वाक्य ।

''भट्ट जी से हमारी एक प्रार्थना है । वह यह कि समय के रंगढ़ंग को देखकर उन्हें अपने लिखने का तर्ज अब कुछ बदल देना चाहिए और जिन विषयों पर वे अक्सर लिखा करते है उनमें भी परिवर्तन करना चाहिए ।''

प्रेस एक्ट का आतंक इतना छाया हुआ था कि द्विवेदी जी 'सरस्वती' के लेखकों और कवियों को बराबर इस बात की याद दिलाते थे कि रचना प्रत्यक्ष रूप से सरकार के खिलाफ न जाती हो ।

20 मार्च 1915, द्विवेदी जी ने बाबू मैथिलीशरण गुप्त को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने सरकार के प्रेस कानून की चर्चा की है –

''कविता का नमूना मुझे पसन्द है । पूरा करके भेजिए । कोई बात समय और सरकार के विरुद्ध न रहे । इशारा भी न रहे । कल नया कानून बना है । कानून क्या मार्शल्ला - जंगीकानून है । फांसी तक ही सजा है ।''[13]

उस युग की दो प्रतिनिधि पत्रिकाओं – 'सरस्वती' और 'मर्यादा' - के एक ही साल के अंकों को एक ही साथ रखकर देखें तो 'सरस्वती' के राष्ट्रीय संघर्ष की शक्ति का अन्दाजा सहज ही लगाया जा सकता है । जहां एक ओर 'सरस्वती' अपने लेखकों को बारबार यह चेतावनी देती रहती थी कि – ''इस पत्रिका में ऐसे राजनीतिक व धर्म संबंधी लेख न छापे जायेंगे जिनका संबंध समसामयिक घटनाओं से हो ।''[14] तो दूसरी ओर 'मर्यादा' में 'क्या हम स्वयम् स्वतंत्र नहीं हो सकते ?' 'दलबल' जैसे राजनैतिक विचारोत्तेजक लेख तथा 'समरगीत', 'स्वतंत्रता की हुंकार' जैसी राष्ट्रीय भावना उभारने वाली कविताएं छपती थीं ।[15] जिनसे जनता में आत्मबल और स्वाधीनता की भावना का विकास होता था ।

13- बेजनाथ सिंह, द्विवेदी - पत्रावली, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी ; पृ0 130

14- सरस्वती के लेखकों के लिए जो नियम थे उनमें नं0 3

15- मर्यादा, 1914 मई-अक्टूबर, की विषय सूची से ।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में 'नेशनल कांग्रेस' की स्थापना (1885) एक महत्वपूर्ण घटना थी । पट्टाभि सीतारमैया ने तो यहां तक कहा है ''कांग्रेस का इतिहास सच पूछो तो भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का ही इतिहास है ।''[16] कांग्रेस राष्ट्रीय आन्दोलन की धुरी थी । उसने बिखरी हुई राजनैतिक चेतना को संगठित करके एक आन्दोलन का रूप दिया था । उस समय कांग्रेस का परिचय देकर उसके कार्य-कलापों को जनता तक पहुंचाना, उसके अधिवेशनों तथा कार्यकर्त्ताओं पर टिप्पणी करना, सभी देश-भक्त पत्र-पत्रिकाएं अपना धर्म समझती थीं ।

'सरस्वती' ने 'मर्यादा' के समान राष्ट्रीय नेताओं के लेख तो नहीं छापे लेकिन उनका जीवन परिचय तथा फोटो छापकर अपने राजनैतिक धर्म की रक्षा जरूर की ।

19 वीं सदी के अंतिम वर्षों में क्रांतिकारी विचारों से लैस तिलक राजनैतिक मंच पर उभर कर सामने आए । 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं उसे लेकर ही रहूँगा' का उद्घोष करने वाले इस नेता का फोटो और जीवन-परिचय मार्च 1904 की सरस्वती में छपा है । लेख के आरंभ में ही उनके उन कार्यों का संक्षिप में उल्लेख है जिनके कारण अंग्रेजी सरकार उनके खिलाफ थी –

''पूना के 'केसरी' नामक प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र के सम्पादक पंडित बालकृष्ण गंगाधर तिलक, बी0ए0, एल0एल0बी0, को लोग जितना उनकी विद्वत्ता के कारण जानते है उससे अधिक उनको उनके दुर्भाग्य के कारण जानते हैं । जब पहले-पहल 'केसरी' का जन्म हुआ था तभी एक मान-हानि के मुकदमे में फंसने से उनको कई महीने कारागार में रहना पड़ा । 1897 ई0 में 'शिवाजी के उद्गार' शीर्षक कविता प्रकाशित करने पर उनके ऊपर जो आपत्ति आई उससे उनका नाम प्रायः सारे भारत वर्ष में ही नहीं, किन्तु

16- पट्टाभि सीतारामय्या .:, कांग्रेस का इतिहास, पृ0 ।

विलायत तक में हुआ ।''

तिलक के राजनैतिक जीवन पर सिर्फ इतना ही लिखा है,। लेख का शेष भाग उनकी पुस्तक 'गीता-रहस्य' पर है ।

इसी प्रकार नरमदल के नायक गोखले पर एक लेख निकला है । पूरे लेख का अधिकांश भाग उनकी सामाजिक सेवाओं के विवरण से भरा हुआ है । उनके राजनैतिक जीवन का संकेत मात्र इन पंक्तियों से दिया गया है –

''देश सेवा ही में इन्होंने अपना समय व्यतीत करने का प्रण कर लिया है । अपने प्रान्त से यह वायसराय के कौन्सल के मेम्बर है । अपूर्ण वक्ता है । यूनिवर्सिटी बिल पास होने के समय कौन्सल में जैसी आवेशपूर्ण वक्तृता दी थी वैसी आज तक किसी हिन्दुस्तानी से नहीं बन पड़ी । इससे कौन्सल का 'हाल' काँप उठा था, बिल के उपस्थित करने वालों का चेहरा सुर्ख हो गया था और लार्ड कर्जन तक से उसका येन्नोचित उत्तर नहीं बन पड़ा था । ''

इसी प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलन के कई और नेताओं, दादाभाई नौरोजी, लाला लाजपतराय, पं0 बिशननारायण दर, महात्मा गांधी आदि पर या तो संक्षिप में टिप्पणी छपी है और यदि पूरा परिचयात्मक लेख छपा है तो उसमें इन राष्ट्रीय नेताओं के राजनैतिक जीवन पर कम, उनकी सामाजिक, साहित्यिक सेवाओं की चर्चा अधिक की गई है ।

वास्तविकता यह है कि 'सरस्वती' ने राष्ट्रीय व्यक्तियों, नेताओं तथा संस्थाओं के कार्यकलापों को प्रस्तुत करने में पूरी ईमानदारी नहीं निभाई । सरस्वती का उद्देश्य हिन्दी भाषी क्षेत्र में सांस्कृतिक जागरण करना था । राष्ट्रीय जागरण तो उसका अंग था । इसलिए इसमें, देशोन्नति, समाजसुधार, साहित्य तथा भाषा के परिष्कार पर अधिक बल दिया ।[17]

17- डा0 रामविलास शर्मा ने सरस्वती को 'ज्ञान की पत्रिका' कहा है ।

1905 के बाद 'सरस्वती' की नीति में बदलाव नजर आता है । इस बदलाव का कारण उस समय देश-विदेश में घटित होने वाली कुछ घटनाएँ थीं ।[18] जिसका प्रभाव तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलन और भारतीय साहित्य पर देखा जा सकता है ।

जनवरी; 1906 की सरस्वती में 'वन्देमातरम्' गीत को तीन भाषाओं – संस्कृत, हिन्दी तथा अंग्रेजी - में प्रकाशित किया है । यह गीत 'सरस्वती' के साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष का उद्घोषक है । इसी अंक में 'ईश्वर - स्तुति' नाम से एक कविता छपी है । जिसमें कवि ईश्वर से वह शक्ति देने की प्रार्थना करता है जो उसे स्वतंत्र भारत में प्राप्त थी –

''भारत को तू दे वह विक्रम
जिससे यह हो पुनः पूज्यतम ।''

स्वाधीनता की भावनाओं को उभारने वाली अंग्रेजी कविताओं के अनुवाद भी सरस्वती में छापे गए हैं । इन कविताओं ने भारतवासियों में देशभक्ति तथा राष्ट्रीयता की भावना का विकास किया । इस संदर्भ में सुप्रसिद्ध स्वतंत्रता प्रेमी अंग्रेजी कवि अर्नेस्ट जोन्स की कविता 'द पोइट स्प्ड लिबरटी' का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है । मूल और उसका हिन्दी अनुवाद 1906, जून की सरस्वती में प्रकाशित हुआ है , जिसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है –

कवि : हे स्वतंत्रते जन्म तुम्हारा कहाँ बता यह प्रश्न हमारा
स्वतंत्रता : शूर देश हित तजते जहाँ प्राण, जन्म मेरा है वहाँ ।

18- बंगाल का विभाजन जिसके विरोध में अनेक जगह हड़तालें हुईं, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार हुआ, 'स्वदेशी', राष्ट्रीय आन्दोलन का बहुआयामी हथियार बन गया । दूसरी महत्वपूर्ण घटना जापान द्वारा रूस की पराजय जिसने भारतवासियों में आत्मबल पैदा किया ।

कवि : बता, निवास कहाँ तेरा है ? यह भी एक प्रश्न मेरा है

स्वतंत्रता : उष्ण रक्त जिन हृदयों भीतर बहता वहीं वास मम सुन्दर

कवि : कौन दुःख देरे हरता है ? आशा पूर्ण कौन करता है ?

स्वतंत्रता : काल जगत का उन्नतिकर्त्ता, आशापूरक दुःख का हर्ता ।

कवि : शक्तिमूल तब कहाँ बता दे, है किस जगत मुझे बतादे

स्वतंत्रता : प्रजापीड़ना होती जहाँ, शक्ति मूल मम रहता वहाँ

कवि : कहाँ निडर हो रहती तू है, जाना कहीं न चाहती तू है ?

स्वतंत्रता : जहाँ न भेद विरोध विकास वहीं निडर मैं करती वास

कवि : कब तू जन्म सफल जानेगी कवि कृतार्थता तू मानेगी

स्वतंत्रता : शांति राज जब पाऊँगी मैं तब कृतार्थ हो जाऊँगी मैं

1906 में अर्नेस्ट जोन्स की इस कविता का प्रकाशित होना अंग्रेजी राज्य के संदर्भ में विशेष व्यंजना रखता है ।

तुलसी बाबा कह गए है – पराधीन सपनेहु सुख नाहि । प्राणी हमेशा से ही स्वतंत्रता प्रेमी रहा है । वह स्वतंत्रता जैसी चीज को सहज ही हाथ से नहीं जाने देता और न जाने देना चाहिए । वह अन्त तक उसे प्राप्त करने के लिए संघर्ष करता है । जब जीवमात्र का यह हाल है तो मनुष्य का तो कहना ही क्या है । द्विवेदी जी भारत-वासियों को पराधीनता की जंजीर तोड़ने के लिए प्रोत्साहित कर रहे थे ।

1906 के जनवरी अंक में 'बलरामपुर का खेदा' लेख छपा है । इस लेख में जंगली हाथियों के परतंत्र होने पर उनकी मनोदशा का चित्रण है । साथ ही परतंत्रता से मुक्त होने के लिए किए गए उनके संघर्ष की भी सराहना इस लेख में है । मनुष्य तो विवेकशील प्राणी है फिर भला वह स्वतंत्रता जैसी चीज को हाथ से क्यों जाने देगा । द्विवेदी जी ने लिखा है –

''अपनी स्वतंत्रता के छिन जाने पर कभी-कभी हाथी को सख्त रंज होता है। कई दिन तक वह एक तिनका भी मुंह में नहीं डालता। जिन आदमियों की स्वतंत्रता छिन जाती है क्या उनको भी कभी इस बात पर अफसोस या रंज होता है ? कोई-कोई हाथी बहुत समझदार होता है। वह समझ जाता है कि छूटने की कोशिश करने या खाने को न खाने से अब कोई लाभ नहीं। इससे दैववश प्राप्त हुई पराधीनता के सामने सिर झुका कर वह पहले ही दिन से खाना शुरु कर देता है। लटूश बहादुर नाम का हाथी इसी पिछली नीति के स्कूल का था। जब उसे पिछली दफा पानी पिलाने के लिए शिकारी हाथी रस्से थामे हुए पानी के पास ले गए तब उसने सिर तक नहीं हिलाया। अपनी दशा पर सन्तोष करके चुपचाप उसने पानी पी लिया। पर चण्डी प्रसाद किसी दूसरे स्कूल का हाथी था उसे इस तरह की नम्र नीति पसंद नहीं आई। खाने पीने में उसने बहुत तंग किया और छूटने की कोशिश में पैरों के रस्सों को खींच-खींच कर व्यर्थ परिश्रम किया। पकड़ते समय भी उसने बड़ी वीरता दिखाई थी - - - - चाहे जो हो जो वीर है वे प्रबल शत्रु के सामने भी वीरता दिखाये नहीं रहते। भेड़-बकरी की तरह, बिना हाथ-पैर हिलाये स्वतंत्रता जैसी प्यारी चीज को वे हाथ से नहीं जाने देते।''

इसी तरह जून, 1910 में सावित्री देवी का लेख 'स्त्रियों की स्वतंत्रता' छपा है। इसमें भी स्वतंत्रता के महत्व को रेखांकित किया गया है --'' स्वतंत्रता एक ऐसी वस्तु है जिससे हर एक जीव हार्दिक स्नेह रखता है। पशु, पक्षी, मनुष्य इत्यादि जितने सृष्टि के जीव है हर एक को स्वतंत्रता प्रिय है। - - - ऐसी अवस्था में जो मनुष्य स्वतंत्र होने के लिए यथाशक्ति चेष्टा किया करते हैं यह कोई अनोखी बात नहीं।''

सरस्वती में स्वतंत्रता का यह स्वर विभिन्न रूपों में व्यक्त किया गया है। जब कोई जाति अथवा देश पतनशील होकर अपनी स्वतंत्रता को खो बैठता है तो उसके विकास

के सब रास्ते अवरुद्ध हो जाते हैं । उस देश या जाति को पुनः खड़ा होने के लिए आत्मबल की जरूरत होती है जो उसे अपने गौरवपूर्ण इतिहास से प्राप्त होता है । इसलिए जहां भारतेन्दु युग के लेखक भारत की दुरवस्था को देखकर रोते है, वहीं द्विवेदी-युग के लेखक 'स्वर्णिम अतीत' के गीत गाते है ।

जनवरी, 1910 की 'सरस्वती' में श्री वेंकटेश नारायण का 'भगवान बुद्ध' नाम से एक लेख छपा है, जिसमें भारत के अद्यः पतन की प्रक्रिया के साथ ही उसकी जाग्रति के उपायों पर भी प्रकाश डाला है –''पर जब कोई जाति अन्धकार में पड़ अपने इतिहास को भूल जाती है, जब अपने महात्माओं का विस्मरण कर देती है, साथ ही साथ उन उच्च आदर्शों को भी भूल जाती है और तुच्छ सांसारिक वासनाओं की पूर्ति में लगकर अद्यः पतन के मार्ग का अनुसरण करती है । फिर तो उस जाति का नाश होना केवल समय की बात रह जाती है । पर पतित जाति का उद्धार भी जनमेजय महाराज की तरह पूर्व पुरुषों की कथा सुनने और विचारने से ही होता है । ठीक यही बात आजकल भारतवर्ष में दृष्टिगोचर हो रही है । देशभर में एक कोने से दूसरे कोने तक जातीयता की लहरों की उर्मियां फैल गयी हैं । और साथ ही साथ भारतवासियों की इतिहास में भक्ति उत्पन्न हुई है । वे अपने पूर्व पुरुषों को श्रद्धा और प्रेम से पूजने लगे हैं । और उनकी पावन कथाओं की सुनने की प्रबल अभिलाषा उनके हृदय में पैदा हुई है ।''

'सरस्वती' में स्वर्णिम अतीत के मिथ को विविध रूपों में रेखांकित किया गया है । इस पत्रिका में ऐसे अनेक महापुरुषों का जीवन चरित प्रकाशित हुआ है जिन्होंने आर्यवृत्त की पवित्र भूमि में जन्म लेकर न केवल इसी देश के गौरव को बढ़ाया है वरन् मनुष्य जाति की उन्नति का द्वार खोला है । मई-जून 1902 के अंक में भारतीय ऐतिहासिक पुरुष भीष्मपितामह का जीवनचरित प्रकाशित हुआ है । जिसमें उनके शौर्य, बल, दृढ़ता,

त्याग आदि वीरोचित गुणों की चर्चा की गई है । लेखक ने उनके इन गुणों को भारतीय नवयुवकों से अपनाने की अपील भी की है –

"हे भीष्म पिता के चरित्र से लाभ उठाने की इच्छा रखने वालो । हे भारत के नवयुवको । हे क्षत्रिय कहलाने का अभिमान करने वालो । भीष्म जी के जीवन के गुणों को सुनहरे अक्षरों में लिख, अपने जीवन का आदर्श बनाओ ।"

इसी तरह अनेक राजा और सम्राटों का भव्य चित्र सरस्वती में खींचा गया है । जिन्होंने अपने शासनकाल में, किसी न किसी क्षेत्र में ख्याति प्राप्त की है । जाति व धर्म की दीवारों को तोड़कर मानवमात्र के कल्याण के लिए कार्य किए है । जिससे आने वाली पीढ़ी उनके चरित्र से प्रेरणा ले सके । 'सरस्वती' में अकबर पर एक लेख निकला है जिसमें उनकी आकांक्षा व्यक्त की गई है –"शासनार्थ ऐसा दुर्ग निर्माण कर जाऊँ जिसकी नींव प्रजा के हृदय पर पड़े और चाहे कैसा ही क्यों न हो, पर इस दुर्ग की एक भी ईंट व पत्थर निर्बल न होने पावे ।"[19] इसके अतिरिक्त राजाभोज (अप्रेल 1901) रानीलक्ष्मीबाई (जनवरी - फरवरी 1904) , दुर्गावती (1901, शिवाजी, गुरुगोविन्द सिंह (1907) आदि अनेक भारतीय वीर-वीरांगनाओं का गौरवपूर्ण परिचय सरस्वती में दिया गया है । जिन्होंने अपनी मान-मर्यादा, अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए अपने प्राणों तक की परवाह नहीं की । आज भी बड़े-बड़े शूरवीरों का धैर्य उनके स्मरण मात्र से छूट जाता है ।

उमाशंकर द्विवेदी की कविता अपने 'पूर्व-पुरुषों के प्रति' (1903 ई० की सरस्वती में) से भी भारत के वीर शिरोमणि आर्यों के यश और कीर्ति की गूंज सुनाई देती है ।

19- सरस्वती, अगस्त 1902

वास्तव में 19 वीं सदी का उत्तरार्द्ध भारतीय शिक्षित वर्ग के मन में आत्महीनता ही उत्पन्न कर सका । पाश्चात्य इतिहास, साहित्य, सभ्यता और संस्कृति की उच्चता को देखकर भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग अपने इतिहास को हेय तथा 'गवारू' समझने लगा । इसलिए उसमें आत्महीनता के भाव उत्पन्न हुए । साहित्यकारो तथा राजनैतिक नेताओं (तिलक आदि ने) इस आत्महीनता के दबाव को दूर करने के लिए अपने प्राचीन अतीत के उज्ज्वल पक्ष को रखकर भारतीय शिक्षित वर्ग में उसके प्रति आस्था का संचार किया । जिससे वे अपने वर्तमान पतन को प्राचीन गौरवपूर्ण अतीत के परिप्रेक्ष्य में रखकर अपने आत्म हीनता के भाव को दूर कर सके । इस पुनरुत्थान की भावना को द्विवेदी युग के साहित्य में ही नहीं, साहित्य से इतर दूसरे क्षेत्रों में भी देखा जा सकता है । इस पुनरुत्थान की भावना से भारतीय जनता के हृदय में राष्ट्रीय जागरण की लहरें हिलोरे लेने लगीं ।

जून 1900 की 'सरस्वती' में एक लेख 'रेस्ट नगर का देवमंदिर' छपा है । जिससे तत्कालीन शिक्षित वर्ग की आत्महीनता के भाव और इसकी प्रतिक्रिया में 'प्राचीन स्वर्णयुग' के मिथ की कल्पना को देखा जा सकता है –

''भारतवर्ष की इस शोचनीय अवस्था में यदि कभी कहीं पर कोई प्राचीनतम आर्य-कीर्ति के समुज्वल निदर्शन दृष्टिगत होते हैं तो चित्त में ऐसे अपार आनन्द समुद्र की तरंगें प्रतिघातित होती हैं कि उस अनिर्वचनीय सुख का अनुभव केवल सहृदयजनों का हृदय ही कर सकता है । इसे समझने पर व्यक्त करने के लिए, कोश में कोई शब्द नहीं है ।''

अप्रैल 1906 के अंक में 'आर्यभूमि' नाम से एक कविता छपी है । इस कविता में आर्यभूमि के गौरवशाली इतिहास को उभारा गया है । इस भूमि की गोद से ऐसे अनेक महापुरुषों ने जन्म लिया, जिनके कार्य से मानवमात्र की कीर्ति में चार चाँद लग गए । देशभक्ति यहाँ के निवासियों के रग-रग में बसी हुई थी –

स्वदेश - कल्याण सु-पुण्य जान
जहाँ हुए यत्न सदा महान
जो थी जगत्पूजित पुण्य - भूमि
वही हमारी यह आर्य भूमि ।

यहाँ के निवासियों ने देश की मर्यादा को अपनी मर्यादा मानकर उसकी रक्षा की –

स्वदेश के शत्रु स्वशत्रु माने
जहाँ सभी ने शर-चाप ताने
जो थी जगत्पूजित शौर्य भूमि
वही हमारी यह आर्य भूमि ।

कवि याद दिलाता है कि यह वही आर्यभूमि है जहाँ सबसे पहले ज्ञान, विज्ञान, सभ्यता - संस्कृति का सूर्य उदय हुआ था –

दिव्यास्त्र - विद्या - बल ; दिव्य यान ;
छाया जहाँ था अति - दिव्य ज्ञान
जो थी जगत्पूजित दिव्य भूमि,
वही हमारी यह आर्य भूमि ।

लेकिन आज वही आर्यभूमि धन, बल, सभ्यता, संस्कृति से खाली है । जिस पर विदेशी सरकार का शासन है । कवि कहता है आज जब उस स्वर्णिम आर्यभूमि की याद आती है तो हृदय वेदना से चित्कार उठता है । वह ईश्वर से प्रार्थना करता है कि क्या ये विषाद के दिन समाप्त नहीं होंगे ? हम इस परतंत्रता की चादर को उतार-कर पुनः अपने स्वर्णिम अतीत को प्राप्त नहीं कर सकेंगे –

'विचार ऐसे जब चित्त में आते
विषाद पैदा करते सताते ;

न क्या कभी देव दया करेंगे ?

न क्या हमारे दिन भी फिरेंगे ?

नाथूराम शंकर शर्मा की 'अद्य: पतन', कविता मई 1906 की 'सरस्वती' में छपी है। इस कविता में प्राचीन भारत के स्वर्णिम दिनों से लेकर ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारत के अद्य: पतन का चित्र उपस्थित किया है। जिस भारत का अतीत गौरवशाली रहा है, जो ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल तथा वाणिज्य-व्यापार में दूसरे देशों का शिक्षक रहा है लेकिन आज वहाँ दरिद्र देवता के दर्शन होते हैं। भारत पतन के गर्त में इतना गिर गया कि आज -

'याजक न रहे, न सिद्ध योगी,
सम्राट् रहे, न राज भोगी ।
व्यापार विशेष कम रहे हैं,
कोरे कंगाल हो रहे हैं ।'

इतना ही नहीं -

'आचार, विचार, धर्म निष्ठा ।
प्रण-पालन प्रेम की प्रतिष्ठा ।।
विद्या, बल, वित्त सब कहाँ हैं ।
विज्ञान विनोद अब कहाँ है ।।'

जो भारत दूसरे देशों को अनाज भेजता था आज वह स्वयम् किसी प्रकार अस्तित्व बचाये हुए है। किसान की हालत देखिए -

'जल का कर बीज व्याज पोता
भले न किसान भूमि जोता ।
ऊँचे खलियान डालते हैं ,
तो भी बस पेट पालते हैं ।

भारत की दरिद्रता का कारण वही है जिसकी आलोचना भारतेन्दु कर चुके थे –

परदेशी माल आ रहे हैं

देशी कल्दार जा रहे हैं ।

भारत बल-शौर्य, सभ्यता और संस्कृति में ही अन्य देशों का नेता ही नहीं था अपितु धन-सम्पदा में भी वह दूसरे देशों का अगुवा था । जनवरी 1909 की सरस्वती में 'भारतवर्ष का वाणिज्य' लेख छपा है । इसके लेखक श्री वैधनाथ नारायण सिंह शर्मा लेख के प्रारंभ में प्राचीन भारत के सुख-सम्पदा की चर्चा की है – ''किसी समय भारत वर्ष धन-धान्य से ऐसा पूर्ण था कि सारे संसार की आँख इस पर गड़ी रहती थी ऐशिया वालों की तो बात ही क्या, यूरोपीयन कवियों तक ने यहाँ के अनन्त धन का वर्णन किया है । सुप्रसिद्ध अंग्रेजी कवि मिल्टन ने अपने विख्यात काव्य 'पैराडाइज लौस्ट' के दूसरे सर्ग की दूसरी पंक्ति में यहाँ के धन के यश का गान किया है । अब अरबवालों की प्रसिद्ध पुस्तक 'अल्फलैला' में तो कितने ही स्थानों में भारतवर्ष के अनन्त धन की चर्चा है । प्राचीन काल में अरब व्यापारी हिन्दुस्तान का बना हुआ बहुमूल्य और सुन्दरमाल देश-देशान्तरों में जाते और वहाँ के धनियों के ऐशो-आराम के सामान को पूर्ण करते थे । यूनान, चीन, और अरब के जितने प्रसिद्ध यात्री हिन्दुस्तान में आए सब यहाँ के ऐश्वर्य को देखकर मोहित हो गए । - - - यह ऐतिहासिक तथ्य है कि भारत पर मुसलमानों ने जो आक्रमण किए थे उसका मुख्य कारण यहाँ की लक्ष्मी ही थी ।'' लेकिन अंग्रेजों के यहाँ आने से स्थिति बिल्कुल बदल गई । इतिहास से परिचित व्यक्ति ही इस बात पर विश्वास कर पायेंगे –

''जो हो, ये सब बातें पुरानी हो गईं । वर्तमान काल में जो लड़के जन्म लेते हैं । यदि आप उनसे भारत के धन का वर्णन करें तो आश्चर्य नहीं कि वे आपकी बातों को गप्प ही समझें ।'' क्योंकि अब यह देश ऐसी दीन दशा को प्राप्त हो गया है

कि कृषि प्रधान होने पर भी 'आजकल चावल रुपये के पाँच सेर बिकते हैं । भारत से बढ़कर धनहीन देश भूखण्ड में शायद ही कहीं होगा । यहाँ के आधे से अधिक मनुष्य ऐसे हैं जिनको दोनों समय भरपेट अन्न भी नहीं मिलता । पिछले दुर्भिक्ष से कोई एक करोड़ व्यक्ति मरगए । दशा बड़ी शोचनीय है ।' - - -(32) ।भारत की इस दरिद्रता और गरीबी का कारण अंग्रेजी राज्य था । क्योंकि अंग्रेजों से पहले जितने विदेशी यहाँ आये या तो वे थोड़े समय के लिए आए और चले गए या यहाँ की मिट्टी के अंग बन गए और यहाँ का धन यहीं रह गया । लेकिन अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी और सरकार का उद्देश्य प्रारंभ से ही यहाँ की मिट्टी में रमना नहीं था । अंग्रेजों का उद्देश्य भारत जैसे कृषि प्रधान और बहुजनसंख्या वाले राष्ट्र को अपने व्यापार का केन्द्र बनाना था । इसलिए अंग्रेजी सरकार ने यहाँ के कारीगरों तथा लघु उद्योगों को कानून तथा दूसरे राजनैतिक दबावों से नष्ट किया । अपने देश की फैक्टरियों में बना हुआ माल भारत में भेजना शुरू किया । भारत ब्रिटेन की फैक्टरियों के लिए कच्चे माल की निर्यात करने वाला मात्र रह गया ।

भारतेन्दु युग के लेखकों ने अपनी रचनाओं में भारत की दुर्दशा का चित्रण किया है लेकिन द्विवेदी युग के लेखकों ने इससे एक कदम आगे बढ़कर, एक तरफ तो अतीत के गौरवपूर्ण पक्ष को उभारकर जनता के सामने रखा और दूसरी तरफ वर्तमान अधःपतन की स्थिति से छुटकारा पाने के लिए देशोन्नति पर बल दिया । देशोन्नति का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू था आर्थिक विकास । इस युग के साहित्यकार महसूस कर रहे थे कि जब तक देश में अच्छे कल-कारखानों की स्थापना नहीं हो, जब तक हमारे यहाँ विदेशी माल के मुकाबले में अच्छा और सस्ता माल तैयार नहीं होगा, तब तक विदेशी माल से टक्कर लेना आसान नहीं । इसलिए व्यापार-वाणिज्य तथा औद्योगीकरण का विकास करके ही हम साम्राज्य-वाद की जड़ें हिला सकते हैं । इसलिए इस युग के लेखकों ने व्यापार-वाणिज्य ,उद्योग-धंधों

तथा कृषि-व्यवस्था में उन्नति के लिए जनता से अपील की है –

'व्यापार - वाणिज्य यहां बढ़ाओ,
अच्छे चला दो कल कारखाने,
विदेशियों को प्रतियोगिता में
उन्हीं के घर में बिठा दो ।

यह तभी संभव हो सकता है जब भारतवासी एक-दूसरे से अपना राग-द्वेष छोड़कर, सामूहिक रूप से इस कार्य में लग जायं-

''उठो-उठो शीघ्र करो न देरी,
हो एक ही तो यह बात मेरी,
स्वदेश सेवा व्रत को उठाओ,
आनन्द का सिन्धु उठो, बहाओ ।''[20]

इसी भावधारा की कविता अगस्त 1906 की सरस्वती में छपी है –

सब यंत्र कला-कौशल के काम संभालो ।
नूतन आविष्कारों के नाम निकालो ।।
कृषि - विद्या और रसायन में रस डालो ।
कोरी कहानियों के कलबूत न ढालो ।।[21]

20- गिरधर शर्मा की कविता 'उद्बोधन', 'सरस्वती' नवम्बर, 1906 से उद्धृत ।

21- नाथूराम शंकर शर्मा की कविता 'समालोचक के लक्षण', 'सरस्वती', अगस्त' 1906 से उद्धृत ।

'स्वर्णिम अतीत' के मिथ की खोज में देवभाषा संस्कृत और उसके साहित्य को 'सरस्वती' में गौरवपूर्ण स्थान दिया गया है । 'सरस्वती' पत्रिका में संस्कृत के उच्च-कोटि के नाटकों तथा काव्य-ग्रंथों का हिन्दी में रूपान्तरण करके संस्कृत साहित्य की समृद्धि को रेखांकित किया गया है । जून 1901 की सरस्वती में 'बाणभट्ट' नाम से एक लेख प्रकाशित हुआ है । उसमें संस्कृत के महाकवि बाणभट्ट की रचनाओं 'कादम्बरी' तथा 'हर्ष चरित' के माध्यम से गद्य-काव्य की तुलना पुरातन ग्रीक, अंग्रेजी तथा रोमन गद्य-काव्य से करके संस्कृत गद्य-काव्य को श्रेष्ठ बताया गया है ।[22]

इसी प्रकार कालिदास के कई नाटकों का अनुवाद हिन्दी में करके हिन्दी-रसिकों के मन में संस्कृत भाषा और साहित्य के प्रति मोह उत्पन्न करने की चेष्टा की गई है ।

19 वीं सदी के उन सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक नेताओं के जीवन परिचय और फोटो सरस्वती में बराबर छपते रहे हैं, जिन्होंने इन क्षेत्रों के व्याप्त

22-"पुराकालीन ग्रीक और रोमन लोगों में जिस प्रकार के गद्य-काव्य की प्रथा प्रचलित हुई और सम्प्रति अंग्रेजी आदि योरोपीय भाषाओं में उसका जो रूप पाया जाता है, वैसा संस्कृत में कदापि किसी काल में उसने ग्रहण किया हो सो नहीं जान पड़ता । उसका गद्य-काव्य कुछ निराला ही है । वैसा और किसी भाषा में कदापि ही होगा । इस भाषा में वर्णों की विलक्षणता, मधुरता एवं प्रौढ़ता है और रचनावैचित्र के लिए शब्द प्रचुरता, समास बनाने के विलक्षण प्रकार और उनकी दीर्घता का अनिर्बन्ध प्रभूत्ति सामग्री अनुकूल होने के कारण अकेले छंद को छोड़कर कविता की पूरी सजावट गद्य-काव्य को देना नितान्त सुकर कार्य हो गया ।" (सरस्वती, जून " 1901, पृ0 201)

रूढ़ियों, अन्धविश्वासों तथा प्रतिक्रियावादी शक्तियों का खुलकर विरोध किया, उनकी बुराइयों को जनता के सामने रखा, जिसके कारण भारतीय जन-जीवन पतनोन्मुख दिशा में जा रहा था । जन चेतना की जाग्रति के लिए इन नेताओं ने अनेक संस्थाएं स्थापित कीं तथा पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किया । जाहिर है 'सरस्वती' सामंतवादी - प्रतिक्रियावादी नीतियों का विरोध करके साम्राज्यवाद की नींव को हिला रही थी ।

1885 में 'नेशनल कांग्रेस' की स्थापना हो चुकी थी । इस मंच के द्वारा लोग सरकार से प्रार्थना करते थे कि भारतवर्ष के शासन में भारतीयों की भी सम्मति लेनी चाहिए । उनके हाथ में भी शासन का भार देना चाहिए । लेकिन महादेव गोविन्द रानाडे आदि नेताओं का मत था कि भारतीयों को शासन में भाग लेने से पहले शासन संभालने के योग्य बनना चाहिए ।"तुम राज्य करने में अपना हिस्सा लो, अपने को इसके योग्य बनालो, तुम में आपस की फूट है, तुम्हारे समाज में बहुत सी कुरीतियां ऐसी है जो तुमको निर्बल और बुद्धिहीन बना रही है । उनका संशोधन करो, प्राचीन भारतीय इतिहास को पढ़ो । पहले जाति बंधन ऐसे कठोर नहीं थे कि ब्राह्मण क्षत्री के हाथ का छुआ न खा सके, क्षत्री ब्राह्मण हो सकते थे ।"[23]

ऐसे कई नेताओं का परिचय 'सरस्वती' में दिया गया है जिन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए प्रयास किया । जिससे सांस्कृतिक, सामाजिक और अंत में राजनैतिक आन्दोलन फलीभूत हो सके और समाज से प्रतिक्रियावादी उन तत्वों को जड़ से उखाड़ा जा सके, जो समाज की प्रगति में बाधक होते है ।

1857 के विद्रोह के बाद भारत के ब्रिटिश शासक भारतीय जनता के विभिन्न समुदायों में फूट डालने और धार्मिक द्वेषों को भड़काने के रास्ते पर चल रहे थे जिससे

23- गोविन्द रानाडे , 'सरस्वती' 1901

विभिन्न सम्प्रदाय और धर्मों के लोग आपस में झगड़ते रहे और सामूहिक रूप से ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध आन्दोलन न कर सकें । लेकिन उस समय कई धार्मिक - सामाजिक नेता अंग्रेजों की इस छलपूर्ण नीति के रहस्य को समझते थे । इसलिए रामकृष्ण परमहंस ने घोषणा की 'सब धर्म एक ही वृक्ष की शाखाएँ है ।'[24] इस प्रकार उन्होंने विभिन्न धर्मों की दीवार को तोड़कर जनता में एकता उत्पन्न की ।

1902 सितम्बर की 'सरस्वती' में स्वामी विवेकानंद का जीवन परिचय छपा है । उसमें स्वामी जी को उन धार्मिक नेताओं में रखा है जिन्होंने वेदों की समसामयिक और वैज्ञानिक व्याख्या करके समाज में व्याप्त अंधविश्वास और रूढ़ियों पर कुठाराघात किया । भारतीयों के ही नहीं विदेशियों के मन में भारतीय धर्म, संस्कृति और साहित्य के प्रति मोह उत्पन्न किया । इस प्रकार उन्होंने भारतीयों की हीन भावना को दूर करके, उनमें आत्मबल पैदा किया ।

ऐसे और भी कई धार्मिक नेताओं का परिचय सरस्वती में दिया गया है जो धर्म पर चढ़े हुए रूढ़ियों तथा मृत परम्पराओं के मुल्लमे को हटाकर उसके मूल की सम-सामायिक व्याख्या कर रहे थे । ऐसे ही एक धर्माचार्य श्री मन्माधवतीर्थ स्वामी का जीवन परिचय जनवरी 1917 के अंक में छपा है । उनके कार्यों का परिचय देते हुए द्विवेदी जी ने लिखा है - 'आप इन नवीन काल की रुचि को भली भाँति समझते थे और देश-काल के अनुसार शास्त्रानुमोदित सामाजिक उन्नति में भी सहायता देते थे । आपके किसी पूर्वाचार्य में यह बात नहीं --- आपने धर्मशास्त्र का दोहन करके विलायत से लौटे हुए लोगों

24- 'सरस्वती', सितम्बर 1902

के लिए प्रायश्चित की विधि का निषेध कर दिया । सामाजिक उन्नति का आधार उद्योग-धंधों को माना ।''

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन, एशियाई नवजागरण का अंग था । एशिया के कई देश यूरोपीय साम्राज्यवादियों की इस मिथ्या धारणा का खण्डन कर रहे थे कि कोई भी एशियाई देश यूरोपीय साम्राज्यवाद की गुलामी स्वीकार किए बिना अपना विकास नहीं कर सकता है । वस्तुतः यह जागरण साम्राज्यवाद के प्रभुत्व के खिलाफ, मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए किया जा रहा था । द्विवेदी जी ने नवजाग्रत एशियाई देशों का परिचय सरस्वती में छापकर राष्ट्रीय संघर्ष में जुटी हुई भारतीय जनता को ऐसे देशों से प्रेरणा लेने के लिए प्रेरित किया । जापान एशिया के नवजाग्रत देशों का अगुवा था । उसने अंग्रेजों का गुलाम बने बिना औद्योगिक विकास में यूरोप से होड़ ही नहीं की अपितु 1905 में यूरोप के एक शक्ति सम्पन्न देश रूस को युद्ध में परास्त किया । जापान के औद्योगिक विकास और युद्ध नीति का गहरा असर भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पर पड़ा । जापान से संबंधित अनेक लेख सरस्वती में छपे है ।

मार्च 1901 की सरस्वती में सिद्धेश्वर शर्मा का 'जापानी साहित्य' नाम से एक लेख छपा है । इस लेख में लेखक ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि जापान एशिया का ऐसा देश है जो बिना अंग्रेजों की कृपाछाया के भी उन्नति के शिखर पर पहुंच गया है । चूंकि भारत का संबंध उससे पुराना है इसलिए भारतवासियों को उससे शिक्षा लेनी चाहिए । सिद्धेश्वर शर्मा ने लिखा है, '' कुछ दिन पहले जिस जापान को लोग असभ्य कहकर तुच्छ समझते थे, आज दिन वही सभ्यता के शिखर पर पहुंच कर भूमण्डल की उन्नतिशील जातियों के लिए आदर्श बन रहा है । इतिहास के देखने से जाना जाता है कि अभी तक जापानियों के समान संसार की कोई भी जाति इतनी शीघ्र उन्नति की चोटी पर पहुंचने में समर्थ नहीं

हो सकी है, यहाँ तक कि पृथ्वी की समस्त सभ्य जातियाँ जापान के इस असंभावित अभ्युदय को देखकर विस्मयापन्न हो रही है ।'' भारत और जापान के संबंधों पर विचार करते हुए लेखक ने इसी लेख में आगे लिखा है, ''एक दिन वह था कि जापानी लोग बुद्धदेव की जन्मभूमि भारतवर्ष को तीर्थ समझकर यहाँ आते थे और एक समय यह है कि भारतीय युवक विज्ञान सीखने के लिए जापान जाते हैं ।''

जून 1904 के अंक में 'जापान और युद्ध' शीर्षक से जीतनसिंह का लेख प्रकाशित हुआ है । इसमें लेखक ने जापान के माध्यम से एशिया के नवजागरण का सूत्रपात माना है । जापान जैसे छोटे से द्वीपसमूह ने रूस जैसी यूरोप की महाशक्ति को ललकार कर एशिया के सभी पिछड़े हुए देशों को यूरोपीय साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष करने की शक्ति दी है, '' इस समय, पृथ्वीतल के सब देशों के प्रायः सभी मनुष्यों का चित्त जापान और उसके विलक्षण देशवासियों की ओर आकर्षित हो रहा है । जापान उस प्रबल रूस को ललकार कर युद्ध ठान बैठा है जिससे यूरोप के प्रायः सब नरेश भय खाते हैं और यथाशक्त उससे दूर रहने का यत्न करते हैं । यह पहला समय है, कि एक एशिया नरेश ने एक यूरोपीय प्रबलशक्ति को छेड़ा है ।'' जापान के द्वारा रूस की छेड़छाड़ एशिया की यूरोप को ललकार थी ।

लेखक ने इसी लेख में आगे कहा है कि यूरोपीय देशों से टक्कर लेने के लिए एशियाई देशों को औद्योगिक क्रांति करनी होगी, उन्हें अपने आर्थिक विकास पर ध्यान देना होगा । इन मामलों में पश्चिमी देशों ने बहुत प्रगति की है । इसलिए एशियाई देशों को उनसे शिक्षा लेनी चाहिए । जापान का उदाहरण देते हुए लेखक ने लिखा है, ''चीन की तरह जापान भी सन् 1868 ई० से पहले विदेशियों को अगम्य था । पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव तब तक जापान पर कुछ भी नहीं पड़ा था । किन्तु उसके बाद जापान में आने जाने की रुकावट किसी के लिए न रही । जापानी लोग स्वाभाविक व्यापारी थे । वे भी व्यापार

केलिए सब देशों को जाने आने लगे । इस तरह बहुत से जापानी लोग इग्लैंड जर्मनी, अमेरिका आदि देशों में जाकर वहां का कला कौशल, दस्तकारी और विज्ञान विद्या सीख आए । इस समय जापानी किसी विषय में पश्चिमी देशों से कम नहीं है ।'' लेकिन जापान ने पश्चिमी देशों का अन्धानुकरण नहीं किया । उसने पश्चिमी देशों से वही चीजें ली है जो उसकी प्रकृति के अनुरूप हों, यद्यपि जापान में पश्चिमी सभ्यता का बहुत ही अधिक प्रचार होता जाता है किन्तु यह सभ्यता बिना विचारे नकल नहीं की जाती । वे ही विषय जापानी लोग विदेशियों से ग्रहण करते है जिनकी उनमें त्रुटि है और जिनका ग्रहण करना वे योग्य समझते है ।''

अक्टूबर 1904 की सरस्वती में 'रूस - जापानी - युद्ध' लेख छपा है । इस लेख के लेखक है श्यामबिहारी मिश्र तथा सुखदेव बिहारी मिश्र । इस लेख में जापानी सैनिकों की वीरता का वर्णन है जिसके बल पर वे यूरोप के शक्तिशाली देश रूस को प्रतिदिन युद्ध-क्षेत्र में परास्त करके एशिया के संघर्षशील देशों को आदर्श मार्ग दिखा रहे थे । लेखक बंधुओं ने जापानी सैनियों का अभिवादन करते हुए लिखा है, ''धन्य असागिरी । और धन्य जापानी सैनिक । तुमने वीरता का झण्डा खड़ा कर दिया और अचल यश प्राप्त किया । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि शूरता के कामों की जहां कहीं प्रतिष्ठा होगी वहां तुम्हारा नाम बड़े भाग्य के साथ लिया जायेगा । तुमने हतभाग्य एशिया का मुख समुज्ज्वल कर दिया । आज पृथ्वी मण्डल के सब लोग एक स्वर से कह रहे है कि जल युद्ध में तुमसे बढ़कर वीरता का काम संसारभर में कभी किसी ने नहीं किया ।''

'सरस्वती' में और भी कई लेख छपे हैं जिनमें जापान के विकास के उन पहलुओं का वर्णन है जिनके आधार पर वह पश्चिम के शक्ति सम्पन्न देशों से टक्कर ले सकता है । जापान के जागरण ने भारतीय जनता में आत्मबल पैदा किया, विकास के रास्ते दिखाकर भारतीय जनता को राष्ट्रीय संघर्ष के लिए तैयार किया ।

'सरस्वती' में जापान के अलावा दूसरे विकासमान पूंजीवादी एशियाई देशों के जागरण की जानकारी देने वाले लेख छपे हैं । जिनसे प्रेरणा लेकर भारतीय जनता ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ी हुई ।

मई 1909 की 'सरस्वती' में 'चीन की जागृति' शीर्षक टिप्पणी छपी है । इसमें कहा गया है कि चीन दुनिया का सबसे अधिक आबादी वाला देश है फिर भी उन्नतिशील जातियों से चीनी लोग पीछे हैं । वहां आधुनिक शिक्षा का प्रबंध नहीं । इस जड़ता को तोड़ने के लिए बहुत से चीनी विद्यार्थी अमेरिका में शिक्षा प्राप्त करने के लिए जा रहे हैं । उनमें अस्सी फीसदी छात्रों का लक्ष्य औद्योगीकरण की शिक्षा प्राप्त करना होगा । ये छात्र 'अमेरिका की नस-नस से परिचित होने के लिए' विभिन्न स्थानों का भ्रमण करेंगे ।

फरवरी 1913 की 'सरस्वती' में इंग्लैंड से भेजा हुआ सुन्दर लाल का लेख ''भारतीय युवकों को उलाहना' छपा है । भारतीय नवयुवकों में देश प्रेम तथा राष्ट्रीय उत्थान की भावना का अभाव देख लेखक ने इन नवयुवकों को उलाहना देते हुए कहा है कि ''जरा अपने जापानी और चीनी भाइयों की ओर देखो और यदि तुम्हारे हृदय में अपने देश की कुछ भी प्रीति हो तो उसका अनुसरण करो और उनके पद-चिन्हों पर चलो ।''

सितम्बर 1915 की 'सरस्वती' में सत्यशोधक का 'चीन में सामाजिक परिवर्तन' शीर्षक लेख छपा । लेखक ने चीन के पिछले पचास वर्षों के इतिहास को रेखांकित करते हुए, उस दौर में हुए परिवर्तन को महत्वपूर्ण बताया । इस समय यूरोप की जातियों ने चीन में जबरदस्ती घुसकर कुछ भूमि छीन ली और कुछ विशेष स्वत्व भी प्राप्त किया । यूरोप की जातियों के अलावा 1895 में चीन ने जापान से हार स्वीकार की । चीन की कमजोर हालत का फायदा उठाकर 'यूरोपीय राष्ट्र मिलकर चीन पर चढ़ आए और उसका मान-मर्दन करके वापस चले गए ।' इसके बाद रूस की जापान के हाथों पराजय ने चीनी

नवयुवकों में राष्ट्रीय जागृति पैदा की । चीनी छात्र विदेशों में ज्ञान-विज्ञान प्राप्त करने के लिए गए । देश में अनेक आन्दोलन ने जन्म लिया और ''अन्त में 1911-12 की चीनी राजक्रांति ने राजसत्ता के स्थान पर प्रजासत्ता स्थापित करके संसार के सामने नए चीन के विकास की घोषणा कर दी ।'' चीन की जनता ने सदियों से पिसी हुई नारी जाति को पुरुषों के समान दर्जा दिलाकर, औद्योगीकरण के द्वारा गुलामी प्रथा समाप्त करके, वर्ण व्यवस्था और जाति-व्यवस्था जैसी सामाजिक विकास में बाधक बुराइयों का उन्मूलन करके, नवविकसित जनतंत्रात्मक शासन की नींव डाली ।

इस प्रकार द्विवेदी जी ने विश्वव्यापी साम्राज्यवादी तथा सामंती व्यवस्था के खिलाफ लड़ने वाले एशियाई देशों का परिचय 'सरस्वती' में छापकर भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में जूझती हुई जनता के मनोबल को बढ़ावा दिया । उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि ब्रिटिश साम्राज्यवादी शिकंजे से छूटने के लिए भारतीय जनता को जापान आदि विकासशील देशों का अनुकरण करना चाहिए । इन देशों की विकास-प्रक्रिया को समझकर भारत का नव-निर्माण करना चाहिए ।

—

अध्याय - 4

राष्ट्रीय आन्दोलन का 'सरस्वती' पर प्रभाव

20 वीं सदी के प्रारंभ से भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन भारतीय जनता की चेतना का अंग बनने लगा था । यह एक बहुआयामी आन्दोलन था जिसका लक्ष्य भारत की आर्थिक , सामाजिक तथा सांस्कृतिक उन्नति करके जनता की राजनैतिक चेतना को जाग्रत करना था । जैसा कि राष्ट्रीय आन्दोलन के तत्कालीन नेता गोविंद रानाड़े ने भारतीय जनता से कहा था 'तुम राज्य करने में अपना हिस्सा लो, इसके पहले अपने को इसके योग्य बना लो, तुममें आपसी फूट है, तुम्हारे समाज में बहुत-सी कुरीतियाँ होती है जो तुमको निर्बल और बुद्धिहीन बना रही है, उनका संशोधन करो, अपनी आर्थिक दशा सुधारो, प्राचीन भारतीय इतिहास को पढ़ो ।''[1] तात्पर्य यह है कि देश की विभिन्न क्षेत्रों में उन्नति करके ही, राजनैतिक परिवर्तन संभव हो सकता है । उस युग की पत्र-पत्रिकाओं ने राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रभाव को विभिन्न रूपों में ग्रहण किया । सरस्वती चूंकि 'मर्यादा' की तरह एक राजनैतिक पत्रिका नहीं थी इसलिए उसका उद्देश्य भी तत्कालीन राजनैतिक घटनाओं का विश्लेषण करना नहीं था । उसने भारतीय जनता को विभिन्न क्षेत्रों में उन्नति के लिए प्रोत्साहित करके अपनी राष्ट्रभक्ति का परिचय दिया ।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में बंग-भंग एक महत्वपूर्ण घटना थी जिसके विरोध में स्वदेशी जैसे बहुआयामी आन्दोलन का जन्म हुआ । इस आन्दोलन ने दोहरा कार्य किया । एक तरफ तो देशी उद्योग-धंधों की स्थापना तथा देशी वस्तुओं के व्यवहार एवं उपयोग पर बल देकर देश की आर्थिक उन्नति की और जनता को अग्रसर करके उसमें आत्मनिर्भरता की भावना पैदा की । दूसरी ओर विलायती वस्तुओं के बहिष्कार के द्वारा

1- 'महादेव गोविन्द रानाडे', सरस्वती, 1901

ब्रिटिश साम्राज्य के अर्थतंत्र पर प्रहार करके, साम्राज्यवाद की नींव हिला दी । सरस्वती के लेखकों ने स्वदेशी आन्दोलन का खुलेदिल से स्वागत किया, ''आजकल भारत में जिधर देखिए उधर ही स्वदेश, स्वराज्य और स्वदेश वस्तु प्रेम की ध्वनि सुनाई दे रही है । भारत हितैषियों का मुख्य व्याख्येय यही हो रहा है । कोई समाचार ऐसा नहीं जिसमें इसकी चर्चा न हो । यह बड़े हर्ष की बात है ।''[2]

महावीर प्रसाद द्विवेदी इस तथ्य से भली-भांति परिचित थे कि भारत की आर्थिक उन्नति के बिना, जनता में राजनैतिक चेतना विकसित नहीं की जा सकती । यहां की आर्थिक उन्नति को सुधारने के लिए उन्होंने भारतीय जनता से स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की अपील की –

''स्वदेशी वस्त्र को स्वीकार कीजै । विनय इतना हमारा मान लीजै ।
सपथ करके विदेशी वस्त्र त्यागो । न जाओ पास उससे दूर भागो।।[3]

जिस समाज-व्यवस्था में साहित्यकार जाता है । वह उसकी समस्याओं को तथा आवश्यकताओं को सामान्य मनुष्य की अपेक्षा अधिक तीव्रता से महसूस करके उन्हें साहित्यिक अभिव्यक्ति देता है । अपने चिन्तन और मनन के द्वारा इन समस्याओं के समाधान का प्रयास भी वह अपनी रचनाओं में करने का प्रयास भी करता है, इसलिए उसे भविष्य दृष्टा कहा जाता है । द्विवेदी जी ऐसे ही भविष्य दृष्टा साहित्यकार थे जिन्होंने स्वदेशी जैसे आर्थिक उन्नति के मंत्र का प्रचार बंगभंग की घटना से पहले करके यह सिद्ध कर दिया कि साहित्यकार राजनीति का अनुसरणकर्ता ही नहीं होता, अपितु राजनीति का अगुवा और दिशा-निर्देशक भी हो सकता है ।

2- रामजीलाल शर्मा का लेख 'स्वदेशी बनाम बायकाट', सरस्वती, जुलाई 1907

3- महावीर प्रसाद द्विवेदी, सरस्वती, जुलाई 1903

नाथूराम शंकर शर्मा ने 'अविद्यानन्द का व्याख्यान' , 'शंकरक्रन्दन', 'पंच पुकार' 'भारत माता का निरीक्षण' आदि अपनी कविताओं में उन भारतवासियों की खूब खबर ली है, जिन्होंने स्वदेश की उन्नति को ताक पर रखकर, विदेशी वस्तुओं के उपयोग में ही अपनी शान समझ रखी है । कवि उन व्यापारियों की कटु आलोचना करता है जो विदेशी माल का क्रय-विक्रय करते है –

''काम स्वदेशी से न चलाते ठग लालच के मारे ।
माल विदेशी बेंच रहे है, खोले कपट-पिटारे ।
दे-देकर अन्नादि उन्हके, परदेशी उपकारे ।
ले ले मोटर, बाच, खिलौने, झीख-झीख झखमारे ।''[4]

और भी देखिए -

'रुई, नाज देशी दिया कीजिए विदेशी खिलौने लिया कीजिए ।
हवेली घरों को सजाया करो, पड़े मस्त बाजे बजाया करो ।।[5]

रायदेवी प्रसाद 'पूर्ण' 'स्वदेशी-कुण्डल' में स्वदेशी आन्दोलन का समर्थन करते हैं । विदेश से आने वाली चीनी के स्थान पर गुड़ या देशी खाँडसारी के व्यवहार का कवि ने समर्थन किया है –

'चीनी ऊपर चमचमी, भीतर अति अपवित्र ।
करते हो व्यवहार तुम, है यह बात विचित्र ।
है यह बात विचित्र, अरे निज धर्म बचाओ ।
चोपायों का रुधिर अस्थि अब अधिक न खाओ ।
है यह पक्की बात बड़ों की छानी- बीनी ।

4- 'भारत-माता का निरीक्षण', शंकर-सर्वस्व, पृ0 235

5- अविद्यानन्द का व्याख्यान, शंकर - सर्वस्व, पृ0 158

करो खूल स्वीकार करो मत नुक्ता-चीनी ।'[6]

'भारत-भारती' में मैथिलीशरण गुप्त ने स्वदेशी वस्तुओं की उपेक्षा के कारण होने वाली भारत की आर्थिक अद्योगति की ओर संकेत किया है -

"आता विलायत से यहाँ वह माल नाना रूप में ।
आश्चर्य क्या फिर हम पड़े है जो अंधेरे कूप में ।
हम दूसरों को पाँच सौ की बेचते हैं जब रुई ।
सानन्द कहते है कि हमको आय क्या अच्छी हुई ।
पर दूसरे कहते कि ठहरो वस्त्र जब हम लायेंगे ।
तब और पैंतालीस सौ लेकर तुम्ही से जायेंगे ।
हम काँच लेकर दूसरों को दे रहे हीरे खरे ।
निज रक्त के बदले ममोदक ले रहे है, हा हरे ।"

स्वदेशी आन्दोलन राष्ट्रीय संघर्ष का मूलमंत्र बन गया था । इस आन्दोलन का स्वागत सरस्वती ने विभिन्न स्तरों पर किया । द्विवेदीजी ने सरस्वती में उन पत्र-पत्रिकाओं का परिचय भी उत्साह से छापा है जो स्वदेशी आन्दोलन को जन-सामान्य की चेतना का अंग बना रहे थे ।

मई 1907 की सरस्वती में 'हिन्दी-केशरी' का परिचय देते हुए द्विवेदी जी ने लिखा है, 'हिन्दी केशरी निकल आया । अच्छा निकला । - - - - पहले पृष्ठ के ऊपर मातृभूमि का चित्र है । सिर पर मुकुट है । - - - ऊपर बन्देमातरम् छपा है । ब्लाक बहुत अच्छा है । भाव से भरा हुआ है । भीतर तिलक का चित्र है । मुख्य लेख, उनके

6- सरस्वती, जुलाई 1910

मराठी केसरी के 'स्वराज्य और सुराज्य' लेख का हिन्दी में भावार्थ है । - - - - 'स्वदेशी आन्दोलन और बहिष्कार', 'स्वदेशी माल और कारखाने' आदि और भी इसमें कितने ही महत्वपूर्ण लेख है । आशा है , इस पत्र से वही काम होगा जो तिलक महाशय के मराठी पत्र से हो रहा है ।''

कविता, फुटकर लेख तथा टिप्पणियों के अतिरिक्त कहानियों के पात्र भी स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने का प्रचार कर रहे थे । 'दुलाईवाली' कहानी का नायक बंशीधर कहता है, ''नहीं, एक देशी धोती पहिनकर आना था ; सो भूलकर विलायती ही पहिन आए । नवल कटूटर स्वदेशी है । वे बंगालियों से भी बढ़ गए है । देखेंगे तो दो चार सुनाए बिना न रहेंगे । और बात भी ठीक है । नाहक विलायती चीजें मोल लेकर क्यों रुपये की बरबादी की जाय ? देशी लेने से दाम अधिक लगेगा, पर रहेगा तो देश ही में।'' इस प्रकार सरस्वती ने स्वदेशी के माध्यम से देशोन्नति पर बल देकर, अपनी देशभक्ति का परिचय दिया । दूसरी ओर विदेशीमाल के बहिष्कार के द्वारा साम्राज्यवाद विरोधी नीति का समर्थन किया । स्वदेशी आन्दोलन देश प्रेम का प्रतीक था ।

देश प्रेम की भावना सरस्वती की मूल संवेदना से जुड़ी हुई है । सरस्वती के लेखकों ने देश-प्रेम की भावना को कई रूपों में व्यक्त किया है ।

कांग्रेस की स्थापना से पहले भारत में जातीय, धार्मिक और साम्प्रदायिक चेतना तो विद्यमान थी परन्तु राष्ट्रीय चेतना का अभाव था । यद्यपि पुराने संस्कार सहज में ही छूटने वाले नहीं थे फिर भी कांग्रेस के जन्म के बाद और पश्चिमी प्रभाव के फलस्वरूप हमने अपने देश की एक इकाई के रूप में देखा ।[8] भारत हमारी जन्म भूमि है उसके निवासी चाहे वे किसी भी धर्म, जाति या समुदाय के हों, इसके पुत्र है । यह भावना

7- सरस्वती, मई 1907

8- डा0 श्रीकृष्णलाल शुक्ल, आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ0 82

नई थी । कांग्रेस की स्थापना के बाद हिन्दी कवियों ने इस भावना को ग्रहण किया था । इस भावना ने अनेक मुक्तक गीतों को जन्म दिया, जिनमें मातृभूमि प्रेम की भावना अधिक व्यंजित हुई । मातृभूमि की स्तुति में अनेक कवियों ने अपनी कवित्व शक्ति का परिचय दिया ।

द्विवेदी जी ने जनवरी 1906 की सरस्वती में 'बन्देमातरम्' गीत को संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं में छापकर हिन्दी लेखकों को देश प्रेम की अभिव्यक्ति का एक नया मार्ग दिखाया । 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' का भाव मन्नन द्विवेदी गजपुरी की इन पंक्तियों में मिलता है –

''जन्म दिया माता-सा जिसने किया सदा लालन-पालन ।
जिसके मिट्टी जल से ही है रचा गया हम सबका तन ।
गिरकर गण रक्षा करते हैं उच्च उठा के शृंग महान् ।
जिसके लता-द्रुमादिक करते हमको अपनी छाया दान ।
माता केवल बालकाल में निज अंकन में करती है ।
हम अशक्त जब तलक तभी तक पालन-पोषण करती है ।
ऐसी मातृभूमि मेरी है स्वर्ग लोक से भी न्यारी ।
जिसके पद कमलों पर मेरा तन-मन धन सब बलिहारी।''[9]

स्वर्ग से भी न्यारी इस मातृभूमि की शौर्य और सौन्दर्य की महिमा का गान मनुष्य ने ही नहीं अपितु देवताओं तक ने किया है –

''जय जय भारत-भूमि भवानी ।
अमरों ने भी तेरी महिमा बारंबार बखानी ।।

9- सरस्वती, मार्च 1912

तेरा चन्द्र-वदन वट विकसित शांति-सुधा बरसाता है,

मलयानिल - विश्वास निराला नव जीवन सरसाता है ।

हृदय हरा कर देता है यह अँचल तेरा धानी है ,

जय जय भारतभूमि भवानी ।। ..10

इसी प्रकार भारत-भूमि की स्तुति 'भारत वन्दना' में श्रीधर पाठक ने की है । अपनी मातृभूमि की वन्दना के पुष्प अर्पित करते हुए कवि ने अपने मनोवेगों को कोमलकान्त पदावली में इस प्रकार व्यक्त किया है –

प्रनामि सुभग सुदेश भारत सतत मम-मनरंजनम्

मम देश मम सुखधाम मम तन-प्रान-धन-जन जीवनम्

मम तात - मात - सुतादि प्रिय निज-बंधु- गृह-वधु-गृह-गुरु-मंदिरम्

सुर-असुर-नरनागादि - अगनित - जाति - जन - पद-सुन्दरम् ।। ..11

देश प्रेम की भावना का स्वर द्विवेदी के काव्य में आदि से अंत तक सुना जा सकता है । हमारा देश शौर्य में, सौन्दर्य में, धन-धान्य की पूर्णता में अपना सानी तीनों लोकों में नहीं रखता । कवि ऐसे अनुपम देश की विजय की कामना करता हुआ कहता है –

जै जै प्यारे देश हमारे

तीन लोक में सबसे न्यारे

हिमगिर - मुकुट मनोहर धारे

जै जै सुभग सवेश ।। जै जै प्यारे भारत देश

10- मैथिलीशरण गुप्त, मंगल-घट, पृ0 33

11- सरस्वती, जुलाई 1913

जै जै हे देशों की स्वामी

नामवरों में भी है नामी

है प्रणम्य तुझ को प्रणमामी

जीते रहो हमेशा ।। जै जै प्यारे भारत देश ।।[12]

ऐसी मातृभूमि जिसकी गोद में हम पले है, जो हमेशा से हमारे दुःख-सुख की साथी रही है । जिसकी स्तुति देवताओं तक ने की है । ऐसी अपनी मातृभूमि को छोड़कर जो मनुष्य दूसरे देश के उपकार की बात कहता है वह अवश्य ही दुःख का भागी है –

'देश-ममता छोड़ जो परदेश के उपकार में ।

है लगा वह क्यों न डूबे दुःख - पारावार में ।

इन्दु नभ को छोड़ जो रहता न हर के माथ में ।

भस्म से क्यों लिप्त होता पड़ पराये हाथ में ।[13]

हिन्दी-कवियों की तरह, उर्दू-कवियों ने भी भारतीय जनता में देश प्रेम की भावना को उभारने में कोई कसर नहीं छोड़ी । इकबाल के राष्ट्रीय तराने ने कितने ही नवयुवकों को स्वाधीनता की लड़ाई में उतार दिया –

'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा ।

हम बुलबुले हैं इसके यह गुलसिताँ हमारा ।

पर्वत वो सबसे ऊँचा हमसाया आसमा का ।

वह सन्तरी हमारा वह पासबाँ हमारा ।

गोदी में खेलती है उसके हजारों नदियाँ ।

गुलशन है जिनके दम से सूकेजनाँ हमारा ।।[14]

12- द्विवेदी - काव्य-माला, पृ० 453

13- रामचरित उपाध्याय, 'परोपकार', 'सरस्वती,' जून 1913

14- वतन के गीत, पृ० 52

इस प्रकार द्विवेदी युग के कवियों ने अपनी मातृभूमि के प्राकृतिक सौन्दर्य की विविध झाँकियाँ प्रस्तुत की । उनके लिए मातृभूमि का एक-एक कण पावनता लिए हुए था । अपनी मातृभूमि को देवी रूप में अंकित करके इन कवियों ने भारतीय जनता को उसकी अर्चना करने के लिए बाध्य कर दिया । ऐसी पुण्यरमा जन्मभूमि को विदेशियों के शिकंजे से मुक्त करना भारतीय जनता के लिए एक धार्मिक कर्त्तव्य सा बन गया ।

सरस्वती में देश प्रेम की भावना के विविध रूप मिलते है । अंग्रेजी शिक्षा-संस्कृति के प्रभाव के कारण भारतीय शिक्षित वर्ग में अपने साहित्य, संस्कृति तथा सभ्यता के प्रति हीनता के भाव पैदा हो गए थे । तिलक आदि उग्रवादी नेताओं की तरह, हिन्दी साहित्यकारों ने भी, प्राचीन आर्यभूमि के गौरवपूर्ण पक्षों को उभारकर जनता के मन में व्याप्त आत्महीनता के भाव को दूर ही नहीं किया अपितु जनता में आत्म सम्मान, आत्मगौरव की भावना पैदा की ।

फरवरी 1907 की सरस्वती में आचार्य द्विवेदी ने एक टिप्पणी लिखी । जिसमें आर्यभूमि के गौरवपूर्ण अतीत के परिप्रेक्ष्य में ब्रिटिश कालीन भारत के पतन पर दुःख व्यक्त किया है – "हे भारत भूमि । एक समय था जब दूसरे सुकृतों की सारी प्रशंसनीय बातों की तू जननी थी । तेरी विद्या आदि दिव्यगुणों के कारण फैले हुए तेरे यश ने तेरा नाम समग्र संसार में प्रसिद्ध कर दिया था । परन्तु हाय, हाय ? अब वे तेरे सुखमय दिन नहीं रहे । इस समय उसका स्मरण होते ही कौन ऐसा मनुष्य है जिसका चित्त महाशोक सागर में न डूब जाता हो ?"

मैथिलीशरण सरस्वती के प्रतिनिधि कवि हैं । उन्होंने 'भारत भारती'[15] में आर्यभूमि की अनेक रूपों में श्रेष्ठता सिद्ध की है । उन्होंने यह दिखाने का प्रयास किया है कि हमारे यहाँ स्त्रियाँ भी पुरुषों से सद्गुणों में कम नहीं थीं । हमारे पूर्वज विद्या,

---

15- भारत - भारती 1912 में प्रकाशित हुई, उससे पहले उसके महत्वपूर्ण अंश 'सरस्वती' में छप चुके थे ।

ज्ञान, साहित्य, कला-कौशल , वीरता आदि में सर्वश्रेष्ठ थे । जिन सिद्धान्तों का निरूपण हमारे पूर्वज हजारों वर्ष पहले कर गए आज उसी के बल पर यूरोप के लोग अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर रहे है । ऐसी गौरवपूर्ण परम्परा वाली हिन्दू जाति की अधोगति पर दुःख प्रकट करते हुए कवि कहता है –

'हत भाग्य हिन्दू जाति ! तेरा पूर्व-दर्शन है कहाँ ?
वह शील, शुद्धाचार, वैभव, देश अब क्या है यहाँ ?
क्या जान पड़ती वह कथा अब स्वप्न की-सी है नहीं ?
हम है वहीं पर पूर्व दर्शन दृष्टि आते है कहीं ?'

द्विवेदी युग के साहित्यकारों ने भारत के वर्तमान अधःपतन की विस्तृत चर्चा अपनी रचनाओं में की है । जिस देश की भूमि दूसरे देशों का भी भरण-पोषण करती थी । जहाँ बारहों मास हरियाली ही रहती थी आज वहाँ –

'दुर्भिक्ष - राक्षस यहाँ सबको सताता ,
लाखों मनुष्य यह प्लेग कृतान्त खाता,
नाना विपत्ति - अभिभूत प्रजा यहाँ है,
भूखों यहाँ मर रहे नर है करोर
बे वस्त्र लोग सहते नित शीत घोर
दरिद्र - दुःख नित ही बढ़ता जाता है
कर्त्तव्य क्या न कुछ भी तुझको वहाँ है ?'[16]

16- 'कर्त्तव्य पंचदशी' , 'सरस्वती', अप्रैल 1906

नाथूराम शंकर शर्मा की कविता 'हमारा अद्यः पतन' में देश की दुर्दशा का विशद एवं आर्द्र चित्र प्रस्तुत किया है ।[17] 'भारत भारती' के वर्तमान खण्ड में मैथिलीशरण गुप्त ने भारत में व्याप्त दरिद्रता और दुर्भिक्ष के चित्र उभारे है । भारत की आर्थिक दरिद्रता ईस्ट इंडिया कम्पनी को कारण ठहराते हुए द्विवेदी जी ने अपने 'सम्पत्तिशास्त्र' निबंध में लिखा है –

''ईस्ट इंडिया कम्पनी की प्रभुता के पहले और उसके बाद तक भी इस देश में उद्योग-धंधों की अधिकता थी । बेहद माल तैयार होता था और देश-देशान्तरों को भेजा जाता था, पर कम्पनी ने अनेक युक्तियों से उसका सर्वनाश कर दिया । यहाँ के कला-कौशल के पुनरुज्जीवन की तरफ गवर्नमेंट का भी विशेष ध्यान नहीं ।''[18]

नाथूराम शंकर शर्मा ने भी अपनी कविता 'कजली कलाप' में भारत के दरिद्र होने के कारणों पर प्रकाश डाला है –

'रेल-रेल सम्पत्ति की सेना, पहुंची सागर पार ।
घेर लिया दारुण दरिद्र ने देशों का सरदार ।।
उन्नतिशील विदेशी मिलकर करते है व्यापार ।
दम ठाली दिन काटें उनकी और निहार-निहार ।।[19]

उक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि 'सरस्वती' के प्रायः सभी लेखकों और कवियों में भारतवर्ष की वर्तमान अधोगति से मुक्ति की छटपटाहट दिखाई देती है । चारों ओर से हताश और दबी हुई भारतीय जनता में आत्मबल और आत्मविश्वास पैदा करने के लिए 'सरस्वती' के लेखकों और कवियों ने एक ओर अपने प्राचीन स्वर्णिम अतीत के विभिन्न पहलुओं की छवि को उभारकर जनता के सामने रखा तो दूसरी ओर जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उन्नति करने के लिए जनता को उद्बुद्ध किया । 'सरस्वती'

17- सरस्वती, मई 1906
18- वही , अप्रैल 1907
19- वही, अगस्त 1907

के लेखकों ने देशोन्नति के माध्यम से देश प्रेम की भावना को अभिव्यक्ति दी है । भारतीय जनता में राजनैतिक चेतना फूंकने के लिए इस युग के साहित्यकारों ने देश की आर्थिक दशा सुधारना जरूरी समझा । इस कारण सरस्वती के लेखकों ने भारत के आर्थिक विकास पर विशेष बल दिया है ।

द्विवेदी जी उस युग के सचेत साहित्यकार थे । उन्होंने अपना साहित्यिक जीवन अर्थशास्त्र की विस्तृत जानकारी के बाद शुरू किया । इस विषय पर 1908 में 'सम्पत्ति शास्त्र' नाम की पुस्तक भी लिखी । इस पुस्तक में उन्होंने यह दिखाया है कि किसी देश की आर्थिक सम्पन्नता दो ही मुख्य स्त्रोतों पर अवलंबित होती है – कृषि की उन्नति और वाणिज्य - व्यापार का विकास । लेकिन हिन्दुस्तान में, अंग्रेजी सरकार ने कृषि पर अधिक से अधिक मालगुजारी वसूल करके और वाणिज्य- व्यापार को बढ़ाने वाले उद्योग धंधों का गला घोंट कर, विकास के दोनों ही रास्ते अवरुद्ध कर दिए । अंग्रेजी सरकार माल गुजारी आये साल बढ़ाती ही जाती थी । ''मालाबार जिले में तो 84-85 और 105 फ़ीसदी मालगुजारी वसूल की जाती थी ।''[20] इस पर भी अंग्रेजी सरकार का दावा था कि मालगुजारी ज्यादा नहीं है । इस पर द्विवेदी जी ने लिखा है, 'यदि मालगुजारी ज़ियादा नहीं तो फिर क्या कारण है जो हजारों लाखों कृषकों के बैल-बधिये बिक जाते हैं और लाखों एकड़ जमीन नीलाम हो जाती है ? आप देहात में जाकर देखिए, सौ पचास किसानों में कहीं एक-आध आपको ऐसा मिलेगा जिसे रोटी, कपड़े की तकलीफ न हो । यह हम समय-सुकाल की बात कहते हैं । अकाल में तो जो दृश्य देहात में देखा पड़ता है वह बहुत ही हृदय द्रावक होता है ।''[21] इस प्रकार अंग्रेजी साम्राज्य के शोषण का केन्द्र भारतीय किसान था जिसके बलबूते पर अंग्रेजी साम्राज्य का ढांचा टिका हुआ था । अंग्रेज सरकार

20- सम्पत्ति-शास्त्र, पृ0 142

21- वही, पृ0 146

भारतीय किसान के अधिक से अधिक शोषण में लगी हुई थी लेकिन कृषि की पैदावार बढ़ाने के उपाय उसने नहीं किये ।

अंग्रेजों ने भारत की कृषि को ही चौपट नहीं किया बल्कि यहां के औद्योगीकरण की जड़ काटकर वाणिज्य-व्यापार को भी नष्ट कर दिया । द्विवेदी जी ने अंग्रेजों की व्यापारनीति की भी कटु आलोचना की है – ''विलायत की चीजों से यहां की बाजारें भी हुई है । शुरूशुरू में इंगलिस्तान की गवर्नमेंट ने यहां के कपड़े की रफ्तनी को, विलायत में उस पर बड़ा महसूल लगाकर, बिल्कुल ही रोक दिया । यहां का व्यापार - यहां का कला-कौशल – मारा गया । अब जब उसके पुनरूज्जीवन की ओर लोगों का ध्यान गया है तब यथेष्ट कर लगाकर विलायती वस्तुओं की आमदनी रोकी नहीं जाती । अगर किसी विलायती चीज पर कुछ महसूल है भी तो इतना कम कि न होने के बराबर है ।''[22]

द्विवेदी जी ने अंग्रेजी सरकार की शोषण-नीति को उजागर करके भारतीय जनता को इसके खिलाफ लड़ने के लिए स्वदेशी और लगानबंदी जैसे दो मूलमंत्र भी दिए । जिससे ब्रिटिश साम्राज्यवाद की जड़ें काटी जा सकें ।

द्विवेदी पूंजीवादी - पद्धति से देश का विकास करना चाहते थे । इसलिए उन्होंने उद्योग-धंधों की स्थापना पर विशेष बल दिया । मशीनों की सहायता से कम कीमत में अधिक माल तैयार होता है । इसलिए उसकी कीमत भी कम रहती है । द्विवेदी जी ने लिखा है, ''जो चीजें यंत्रों की सहायता से तैयार की जाती है उनकी उत्पत्ति खर्च के हिसाब से अधिक होती है । अर्थात् उनकी तैयारी में बहुत कम खर्च पड़ता है । इसीसे उनकी कीमत कम होती है । क्यों उत्पत्ति का खर्च जितना अधिक होता है, कीमत उतनी ही अधिक बढ़ती है । कल्पना कीजिए कि आपको ढ़ाके की मलमल का एक थान दरकार है । उसमें जो रूई लगती है उसकी कीमत बहुत होगी तो दो रूपये, अधिक नहीं पर उसे हाथ से तैयार करने में बहुत मेहनत पड़ती है । इसी से उसकी कीमत ज्यादह देनी पड़ती है। - -

---

22- सम्पत्ति शास्त्र, पृ0 197

अतएव सस्ती चीजें तभी मिल सकती है, और उनका संग्रह तभी बढ़ सकता है, जब यंत्रों से काम लिया जाय । जितना ही बड़ा कारखाना होगा और जितना ही अधिक यंत्रों का उपयोग किया जायेगा उतना ही माल अधिक तैयार होगा और उतनी ही कम लागत भी लगेगी ।''[23]

द्विवेदी जी अच्छी तरह समझते थे कि भारत के आर्थिक विकास में अंग्रेज सरकार की कोई दिलचस्पी नहीं है । यदि भारत का औद्योगीकरण किया गया तो ब्रिटेन के उद्योग-धंधे तथा वाणिज्य-व्यापार की दुर्गति अवश्यंभावी है, क्योंकि भारत ही एकमात्र ऐसा देश है जो ब्रिटिश कारखानों को कच्चामाल देता है और वहाँ से तैयार हुए माल को अपने यहाँ खपाता है । इसलिए द्विवेदी जी का विचार था कि भारतीयों को सरकार से भारत में उद्योग-धंधे स्थापित करने की आशा बिल्कुल नहीं करनी चाहिए । उन्हें सामूहिक रूप से कल-कारखानों की स्थापना की सलाह देते हुए द्विवेदी जी ने लिखा है – ''कल-कारखाने खोलने में रुपया दरकार होता है । यदि कुछ आदमी मिलकर कम्पनियाँ खड़ी करें तो यथेष्ट पूँजी एकत्र हो सकती है । उससे यदि कारखाने खोले जायँ तो चीजें सस्ती हो जायँ और विदेश से आने वाले माल की खपती कम हो जाय । देश का धन देश ही में रहे ।''[24]

द्विवेदी जी इस तथ्य से भलीभाँति परिचित थे कि भारत का पूर्ण विकास उद्योग-धंधों की उन्नति पर ही निर्भर नहीं करता । चूँकि भारत एक कृषि प्रधान देश है इसलिए खेती की उपज को बढ़ाना जरूरी है । इस कारण उन्होंने वैज्ञानिक ढंग से खेती करने पर बल दिया – 'जमींदार शिक्षित होगा तो वह अपनी जमीन जोतनेवालों को खेती की उन्नत प्रणाली सिखलायेगा, उसका उपजाऊपन बढ़ाने की तरकीबें बतलायेगा, और अनेक प्रकार से उन्हें उत्साहित करके पैदावार को बढ़ावेगा ।''[25]

23- सम्पत्ति-शास्त्र , 'सरस्वती' अप्रैल 1908

24- वही, पृ0 161

25- महावीर प्रसाद द्विवेदी, 'सम्पत्ति-शास्त्र', पृ0 126

द्विवेदी जी ने अन्य लेखकों के ऐसे अनेक लेख सरस्वती में छापे हैं, जिनका उद्देश्य भारत की अर्थ-व्यवस्था को उन्नत करना था। सितम्बर 1913 की सरस्वती में सत्यशोधक का लेख 'भारत के लिए भारत ही के धन का प्रयोग' छपा है। इस लेख में बताया गया है कि किसी देश की औद्योगिक प्रगति के लिए कच्चामाल, मजदूरी, मूलधन तथा बाजार - चीजें आवश्यक होती है। भारत में ये चारों तत्व पर्याप्त मात्रा में मौजूद हैं, लेकिन ब्रिटिश साम्राज्य की नीति के कारण भारत उनका उपयोग नहीं कर पाता। इस कारण भारत में दरिद्रता के दृश्य दिखाई देते है। इससे छुटकारा पाने के लिए लेखक ने लिखा है, ''इस सर्वशून्या दरिद्रता से छुटकारा पाने का एकमात्र उपाय उद्योग है। और भी उपाय है, पर प्रधान उपाय उद्योग-धंधा और व्यापार की उन्नति ही है। अतएव शासक और शासित दोनों का कर्त्तव्य है कि जितना हो सके उतना रुपया उद्योग-धंधे में लगाया जाय।''

द्विवेदी युग के कवियों ने देशोन्नति को देश प्रेम का आवश्यक अंग माना है। उन्होंने अपनी कविताओं में कल-कारखानों की स्थापना तथा कृषि सुधार पर बल देकर जनता को इन कार्यों के लिए प्रोत्साहित किया है। अगस्त 1906 की सरस्वती में नाथूराम शंकर शर्मा की 'समालोचक - लक्षण' कविता छपी है। जिसमें कवि ने समालोचकों से प्रार्थना की है कि वे साहित्यकारों को ऐसी रचना लिखने को प्रेरित करें, जिससे भारतीय जनता कृषि, वाणिज्य- व्यापार तथा उद्योग धंधे के विकास की ओर उन्मुख हो सके। कवि कहता है –

''सब यंत्र कला-कौशल के काम संभालो।
नूतन आविष्कारों के नाम निकालो॥
कृषि - विद्या और रसायन में रस डालो।
कोरी कहानियों के कलबूत न ढालो॥
जो इस प्रकार उन्नति की मूल जमाता है।
वह वीर समालोचक की पदवी पाता है।''

इसी भावबोध की कविता जनवरी 1905 के अंक में छपी है । इसमें कवि विकसित देशों की उन पद्धतियों की जानकारी प्राप्त करके, उनका भारत में प्रचार करना चाहता है जिनसे उन देशों में औद्योगिक/कृषि तथा के क्षेत्र में प्रगति हुई है –

वाणिज्य औ कृषि बढ़ावनहार बातें
जो जो जहाँ मिल सकैं उनको वहाँ से,
ले ले प्रचार करिबे कहँ मोहिं दीजे
सामर्थ्य, नाथ बिनती यह कान कीजे ।।

नवम्बर 1906 की सरस्वती में गिरधर शर्मा की 'उद्बोधन' कविता छपी है । इस कविता में कवि ने विभिन्न वर्गों के लोगों को ललकार कर कहा है कि वे देशोन्नति में एकजुट होकर लग जायं । वे अपने देश में कल-कारखानों की स्थापना करके ही विदेशियों से मुकाबला करने में सक्षम हो सकते हैं । कवि जनता को औद्योगीकरण के लिए उद्बुद्ध करता है –

'व्यापार - वाणिज्य यहाँ बनाओ,
अच्छे चला दो कल- कारखाने,
विदेशियों को प्रतियोगिता में
उन्हीं के घर बिठा दो ।''

इस प्रकार सरस्वती ने प्रारंभ से ही कृषि और औद्योगीकरण पर बल देकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद की अर्थनीति पर कुठाराघात किया ।

देशोन्नति में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । भारतेन्दु युग के साहित्यकारों की भाँति द्विवेदी युग के लेखकों ने भी यह महसूस किया कि अंग्रेजी शिक्षा देश की तत्कालीन आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुकूल नहीं है । उसमें औद्योगिक तथा कृषि-विज्ञान की शिक्षा का पूर्ण अभाव है । द्विवेदी जी ने लिखा है, जिस जाति को - जिस देश को - इस सभ्यता और व्यापार-विषयक चढ़ा - ऊपरी के जमाने में औद्योगिक

शिक्षा नहीं मिलती उसकी आर्थिक दशा कभी उन्नत नहीं हो सकती ।[26] देश की आर्थिक उन्नति के लिए द्विवेदी युग के साहित्यकारों ने उद्योग-धंधे, वाणिज्य व्यापार तथा कृषि विज्ञान की शिक्षा पर बल देकर जनता को इस ओर प्रेरित किया ।

मई 1914 की सरस्वती में श्री विष्णुदास कौछड़ का लेख 'उद्योग धन्धों की शिक्षा की जरूरत' छपा है । इस लेख में भारतीय अमीरों से नवयुवकों को औद्योगिक शिक्षा प्राप्त करने में आर्थिक सहायता देने की अपील की गई है । ''अमीरो । अपने गरीब भाईयों की मदद करो । लायक नौजवानों को कला-कौशल की शिक्षा के लिए दूसरे देशों में भेजा । जब तक हमारे नवयुवक विदेश जाकर शिक्षा न प्राप्त करेंगे तब तक हमारे सिर से मूर्खता का भूत न उतरेगा ।''

जुलाई 1913 की सरस्वती में द्विवेदी जी ने 'भारत वर्ष का वैदेशिक संसर्ग' शीर्षक से एक लेख लिखा । जिसमें उन्होंने बताया है कि भारतवासी कूप मण्डूक बने हुए है । उन्हें अपने देश की उन्नति और विकास के लिए संसार के सभ्य और उन्नतशील देशों से सम्पर्क करना चाहिए । क्यों कि ''कोई भी देश अन्य उन्नतशील देशों के साथ सम्पर्क रखे बिना उन्नति नहीं कर सकता । भारतवर्ष भी इस नियम से बाहर नहीं है । अतएव भारतवासियों को यदि अवनति के गढ़े से निकलकर उन्नति के शिखर पर चढ़ना है तो उन्हें भी, जापानियों की तरह, संसार के सम्पूर्ण सभ्य और उन्नत देशों के साथ सम्बद्ध स्थापित करना चाहिए । इसी में भारतवर्ष का कल्याण है । भारतवासी जब तक इस ओर ध्यान न देंगे तब तक वास्तविक उन्नति होना दुष्कर है ।''

इस प्रकार 'सरस्वती' ने शिक्षा का वैज्ञानिकीकरण करके भारत में औद्योगीकरण का रास्ता खोल दिया । भारत निवासी इस रास्ते पर चलकर अंग्रेजी साम्राज्यवाद से टक्कर लेने में सक्षम हुए ।

26- महावीर प्रसाद द्विवेदी, 'सम्पत्तिशास्त्र', पृ0 198

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान मातृ-भाषा प्रेम देश प्रेम का अंग बन गया । भारतेन्दु हिन्दी के पहले साहित्यकार थे जिन्होंने 'निज भाषा उन्नति अहे । सब उन्नति को मूल ' कहकर भाषाप्रेम को देश-प्रेम से जोड़कर देखा । भारतेन्दु काल में भाषा का कोई निश्चित रूप नहीं बन पाया था । इस काल में भाषा के स्वरूप, उसकी प्रकृति, व्याकरण तथा लिपि को लेकर खूब विवाद हुआ । अन्ततः देश प्रेम, भाषा प्रेम और लिपि प्रेम में बदल गया । इस प्रकार जिन भाषाई तथा साहित्यिक मूल्यों की स्थापना इस काल में हुई, उन्हीं का स्वस्थ विकास 'सरस्वती' पत्रिका में दिखाई देता है । भारतेन्दु काल की भाषा और साहित्य में जो जिन्दादिली तथा चुटीलापन था, द्विवेदी युग में उसका स्थान सहजता तथा प्रौढ़ चिन्तन ने ले लिया ।

द्विवेदी जी भाषा की शक्ति से परिचित थे । उन्होंने लिखा है – 'देश की उन्नति उसकी भाषा की उन्नति पर अवलंबित होती है । जिस देश की भाषा अच्छी दशा में है वह देश उन्नत हुए बिना नहीं रह सकता । विचारों को पुष्ट करने का मार्ग भाषा ही है । जिस देश में विचारों का अभाव है, उस देश की अवस्था कभी भी नहीं सुधरती । और सुविचारों का कला-कौशल, संबंधी ज्ञान का, व्यापार विषयक तारतम्य आदि का देश में भाषा ही के द्वारा प्रचार होता है ।'[27] मातृभाषा की उन्नति पर ही देश की उन्नति तथा विकास निर्भर है, के सिद्धान्त का समर्थन इस युग के दूसरे साहित्यकार भी कर रहे थे - '' मातृभाषा के प्रचार व जातीय साहित्य के उत्कर्ष और समृद्धि पर धर्म तथा देश की उन्नति निर्भर है । सुतरी, इस समय सबसे प्रथम हिन्दी भाषा की उन्नति के लिए चेष्टा और उद्योग करना प्रत्येक देश - हितैषी और धर्मात्मा पुरुष का कर्त्तव्य है ।''[28]

27- महावीर प्रसाद द्विवेदी, 'देशव्यापक भाषा,' सरस्वती, नवम्बर 1903

28- माधव मिश्र - निबन्ध माला 'साहित्यभाग' हिन्दी भाषा, पृ0 4

देश - व्यापक भाषा की समस्या द्विवेदीयुग में ही नहीं थी अपितु आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई है । हिन्दुस्तान की अखण्डता को बनाये रखने के लिए, यहाँ की जनता के हृदय में परस्पर प्रेम, एकता तथा भाईचारे का भाव पैदा करने के लिए यह आवश्यक है कि एक देश-व्यापी भाषा (राष्ट्रभाषा) हो, जिसके आधार पर भारतीय जनता भावात्मक स्तर पर परस्पर जुड़कर राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार कर सके । देश-व्यापी भाषा के इस प्रभाव को स्पष्ट करते हुए द्विवेदी जी ने लिखा है –

''एक भाषा होने का विलक्षण प्रभाव होता है । बहुत भारी असर होता है । उससे मनुष्यों के हृदय में वासना जाग्रत हो उठती है कि हम एक हैं । यह देश हमारा ही है इसकी उन्नति के लिए प्रयत्न करना चाहिए । देश का हित ही हमारा हित है ।- - - एक भाषा के न होने से सच्चा देशाभिमान कभी नहीं उत्पन्न हो सकता । परस्पर एकता कभी नहीं उत्पन्न हो सकती है ।''[29] देश व्यापी भाषा का स्थान ग्रहण करने की योग्यता हिन्दी में ही थी । हिन्दी हिन्दुस्तान की जनता की भाषा है, बोलने, लिखने तथा समझने में वह सरल है । हिन्दी का क्षेत्र व्यापक है । उत्तर हिन्दुस्तान में, पंजाब से लेकर ब्रह्म देश तक यह भाषा बोली जाती है और इसे सब लोग समझते भी हैं । पंजाबी और बंगाली भाषाएँ हिन्दी से बहुत कुछ मिलती - जुलती हैं । मारवाद, मध्यभारत, मध्यप्रदेश, बरार और गुजरात में भी हिन्दी भाषा - भाषी लोग बहुत अधिक हैं । खास महाराष्ट्र के लोग भी अपरिचित नहीं ।[30]

ऐसी भाषा जिसका क्षेत्र व्यापक हो, जिसकी प्रवृत्ति सरल हो, जिसे जन-समर्थन प्राप्त हो, को ही राष्ट्र-भाषा का गौरव दिया जा सकता था । हिन्दी भाषा इस कसौटी पर खरी उतरती थी । 'सरस्वती' के लेखकों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा का स्थान दिलाने के लिए व्यापक आन्दोलन छेड़ा –

29- महावीर प्रसाद द्विवेदी , 'देशव्यापक भाषा', 'सरस्वती', नवम्बर 1903

30- मध्वराव सप्रे, ' महाराष्ट्रों में हिन्दी की चर्चा', 'सरस्वती' 1907

'भारत पर की एक राष्ट्रभाषा हो जावे ।
जो हम सबमें खूब परस्पर मेल बढ़ावे ।
यह अभिलाषा पूर्ण हमारी करने वाली ।
हिन्दी ही है परम पूज्य गुणवती निराली ।'[31]

भारतीय जनता में विभिन्नता के धर्म, वर्ण, जाति आदि अनेक आधार है जो राष्ट्र की उन्नति में पहले ही नहीं आज भी बाधक है । इस विभिन्नता में एकता देशभाषा हिन्दी को महत्व देकर ही स्थापित की जा सकती है –

'हिन्दी को केवल मातृभाषा ही मानो,
व्यापकता में उसे देशभाषा भी जानो ।
होगी मन की बात परस्पर ज्ञात न जौलौं
होकर भी हम एक भिन्न ही से है तौलौं ।
बस हिन्दी ही यह भिन्नता दिन-दिन करती दूर है,
निशेष शक्तिमय ऐक्य को भरती यह भरपूर है ।'[32]

हिन्दी भाषा को अपने विकास की प्रक्रियाओं में अंग्रेजी के अतिरिक्त भारतीय भाषाओं के कई अन्तर्विरोधों से गुजरना पड़ा । हिन्दी-उर्दू का अन्तर्विरोध सबसे प्रमुख था । अंग्रेजी सरकार हिन्दी-उर्दू के भेद को साम्प्रदायिक रंग देकर, 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति को सफल बना रही थी । आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी अंग्रेजी सरकार के इस कुचक्र से परिचित थे । उन्होंने अपने अनेक लेखों में हिन्दी-उर्दू भाषा की बुनियादी एकता पर बल देकर भारतीय राष्ट्रीय संगठन को खण्डित होने से बचाया । 'देशव्यापक-भाषा'

31- गोपालशरण सिंह, 'भारतीय विद्यार्थियों के कर्त्तव्य', 'सरस्वती' फरवरी 1915

32- मैथिलीशरण गुप्त, हिन्दी साहित्य सम्मेलन के लिए लिखी गई कविता, 'सरस्वती' अक्टूबर 1911

लेख में उन्होंने हिन्दी का क्षेत्र बताते हुए लिखा है –'संयुक्त प्रान्त, मध्यभारत, राजपूताना और बिहार की भाषा हिन्दी है । पंजाब में जो भाषा बोली जाती है वह भी हिन्दी ही है, क्योंकि उर्दू कोई भिन्न भाषा नहीं । वह हिन्दी ही की एक शाखा है । हिन्दी का और उर्दू का व्याकरण एक ही है । फ़ारसी और अरबी के शब्दों की प्रचुरता होने से उर्दू उन लोगों की समझ में अच्छी तरह नहीं आ सकती जिनको इन दो भाषाओं के शब्दों का थोड़ा बहुत ज्ञान नहीं है । उर्दू की यदि यह कठिनता निकाल दी जावे तो उसमें और बोलचाल की साधारण हिन्दी में कोई अन्तर नहीं रहे । इसलिए उर्दू को हिन्दी ही समझना चाहिए ।[33]

इस तरह आचार्य द्विवेदी उर्दू की प्रकृति को सरल बनाकर अर्थात् उसमें से अरबी, फ़ारसी के शब्दों को निकालकर, उसे बोलचाल की साधारण हिन्दी के स्तर पर ले आना चाहते थे । द्विवेदी जी की भाषागत नीति सरकार की नीति से ठीक उल्टी थी । उन्होंने हिन्दी-उर्दू के अलगाव को मिटाकर हिन्दू-मुसलमानों में एकता की भावना पैदा की । इससे राष्ट्रीय संघर्ष को बल मिला । डा0 रामविलास शर्मा ने लिखा है, '' द्विवेदी जी ने हिन्दी-उर्दू की एकता पर जो बल दिया, वह जातीय और राष्ट्रीय महत्व का कार्य है।''[34]

भाषा के समान लिपि को लेकर भी साहित्यिकों के बीच में खूब तर्क वितर्क हुए । आचार्य द्विवेदी ने जहां फ़ारसी लिपि को सदोष तथा भ्रामक, रोमन लिपि को विदेशी तथा अनेक दोषों से युक्त बताया, वहीं देवनागरी लिपि की पूर्णता तथा स्पष्टता इस बात में मानी कि इसकी रचना उच्चारण के अनुसार है । इसलिए देवनागरी लिपि में लिखी हिन्दी ही देश व्यापक भाषा हो सकती है ।

'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन तक गद्य और पद्य की भाषा में प्रकृतिगत भेद था । गद्य की भाषा तो खड़ी बोली निश्चित हो चुकी थी, जिसमें उच्चकोटि के निबंध

33- सरस्वती, सितम्बर - नवम्बर 1903

34- डा0 रामविलास शर्मा, 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण' , पृ0 220

तथा नाटक अपनी जिन्दादिली के लिए प्रसिद्ध थे लेकिन अभी तक पद्य की भाषा ब्रज ही बनी रही । गद्य और पद्य की भाषा की भिन्नता से हिन्दी भाषा की अप्रौढ़ता तथा कच्चेपन का ही सबूत मिलता था । 'सरस्वती' के सम्पादक बाबू श्यामसुन्दरदास ने इस समस्या की ओर लेखकों का ध्यान खींचा और विश्वास व्यक्त किया कि ''हिन्दी भाषा के लेखक गण इस ओर ध्यान दें और ऐसा करें कि जिसमें इस बीसवीं शताब्दी में – इस त्रुटि की भी पूर्ति हो जाय और हिन्दी सर्वांग - पूर्ण हिन्दी कहला सके । हमको विश्वास है 'सरस्वती' इस अभाव की पूर्ति के लिए कुछ सहायता पहुँचा सके ।''[35]

जुलाई 1901 की सरस्वती में द्विवेदी जी ने 'कवि-कर्त्तव्य' नाम से लेख लिखा । उसमें उन्होंने समर्थ आलोचक की हैसियत से हिन्दी कवियों को ललकार कर कहा –''कवियों को चाहिए कि क्रम-क्रम से गद्य की भाषा में भी कविता करना प्रारंभ करें । बोलना एक भाषा और कविता में प्रयोग करना दूसरी भाषा ; प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध है ।''

इस प्रकार द्विवेदी जी ने हिन्दी भाषा को एक निश्चित रूप देकर भारतीय जनता की चेतना का अंग बनाया । हिन्दी भाषा के आधार पर भारतीय जनता में भावात्मक एकता स्थापित करके उसमें राष्ट्रीय संघर्ष की शक्ति पैदा की । निश्चित रूप से द्विवेदी जी का भाषाई आन्दोलन राष्ट्रीय आन्दोलन का अंग था ।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का समाज सुधार एक महत्वपूर्ण पहलू था । भारतीय समाज में व्याप्त धर्म, जाति, वर्ग, लिंग भेद आदि प्रतिक्रियावादी तत्वों ने ऐसी जड़ें जमाली थीं कि उन्हें आमूल नष्ट किए बिना भारतीय जनता में राजनैतिक चेतना का उभरना असंभव था । इसलिए राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारंभिक नेताओं ने राजनैतिक जागरण के साथ-

---

35- सरस्वती, जुलाई 1901

साथ सामाजिक जागरण पर विशेष बल दिया । राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारंभिक नेता रानाड़े ने समाज सुधार और राजनैतिक जागरण के अटूट संबंध की व्याख्या करते हुए लिखा है, 'जब तक आपकी सामाजिक व्यवस्था तर्क और न्याय पर आधारित नहीं है, तब तक आप राजनीतिक अधिकारों का उपयोग करने के योग्य भी नहीं हो सकते । यदि आपकी सामाजिक व्यवस्था अच्छी नहीं है, तो आप अच्छी आर्थिक व्यवस्था की स्थापना नहीं कर सकते ।'[36] 'सरस्वती' के लेखकों तथा कवियों ने समाज सुधार को देशोन्नति का आधार माना । उन्होंने भारतेन्दु-युग के साहित्यकारों की तरह सामाजिक कुरीतियों तथा संकीर्णताओं का पर्दाफाश ही नहीं किया वरन् उनसे मुक्ति पाने का मार्ग भी जन-सामान्य को दिखाया ।[37]

नारी मुक्ति आन्दोलन, सामाजिक-राजनैतिक आन्दोलन का मुख्य पहलू था जिससे प्रेरित होकर 'सरस्वती' के लेखकों तथा कवियों ने चिरकाल से पतित और उपेक्षित नारी के प्रति विशेष सहानुभूति प्रकट की है । 'कान्य कुब्ज - अबला -विलाप में पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने युग के नारी जीवन की दुर्दशा को प्रकट किया है । भारतीय नारी अपने जीवन को पति और पुत्र की सेवा में लगा देती है फिर भी वह पशु तुल्य समझी जाती है –

36- के० दामोदरन, भारतीय चिन्तन परम्परा, पृ० 383 से उद्धृत

37- राय देवी प्रसाद पूर्ण की 'स्वदेश - कुण्डल', नाथूराम शंकर शर्मा की 'अविद्यानंद काव्याख्यान', मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' आदि रचनाओं में सामाजिक रूढ़ियों तथा कुरीतियों की कटु आलोचना की गई है ।

'महा मलिन से मलिन काम करती है दिन रात ।

दुःखी देख पति पिता-पुत्र को व्याकुल हो कृश करतीं जात ।

हे भगवान ! दाय तिसपर भी उपमा कैसी पाती है ।

'ढ़ोल तुल्य ताड़न अधिकारी' हमीं बनाई जाती है ।[38]

मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत भारती' में नारियों पर किए गए पुरुषों द्वारा अत्याचार की निन्दा इन शब्दों में की है –

'पाले हुए पशु पक्षियों का ध्यान तो रखते सभी ।

पर नारियों की दुर्दशा क्या देखते हैं हम कभी ।

हमने स्वयम् पशुवृत्ति का साधन बना डाला उन्हें ।

सन्तान जनने मात्र को वसनान्द दे पाला उन्हें ।'

नारी जाति की इस अधःपतन की दशा को देखकर 'भारत भारती' के कवि का हृदय चित्कार कर उठता है –

'अबला जीवन हाय ! तुम्हारी यही कहानी ।

आंचल में है दूध और आंखों में पानी ।'

द्विवेदी युग के साहित्यकारों ने नारी पर किए गए अत्याचारों, उसकी दुर्दशा का ही चित्रण अपनी रचनाओं में नहीं किया अपितु समाज के इस आवश्यक अंग को फिर से सजग तथा सचेत करके उसे पुरुष के समान प्रतिष्ठित करने का यत्न भी किया है । नारी-जाति को इस पतनशील सामंती वातावरण से निकालने का एकमात्र उपाय शिक्षा है ।

38- 'सरस्वती', जुलाई 1906

इसलिए 'सरस्वती' के लेखक ने नारी शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया है ।

जनवरी 1906 की 'सरस्वती' में 'महिला परिषद' का गीत छपा है । इस गीत में महिलाओं से शिक्षा को महत्व देने की विनती की गई है , जिससे वे परम्परागत रूढ़ियों से मुक्त हो सकें और देशहित के लिए अपना योग दे सकें । कवि कहता है –

'विद्या धनों का मूल है पर उस तरफ बहन,
अब तक गया नहीं कभी ध्यान हमारा ।
आओ करें प्रयत्न आज से लगा के दिल,
बढ़ जाये जिससे ज्ञान और मान हमारा ।
विद्या बिना स्वदेश की सेवा न हो सके,
विद्या ही से है सब तरफ कल्याण हमारा ।''

मार्च 1907 की सरस्वती में सत्यदेव का लेख 'शिकागो - विश्वविद्यालय' से प्रकाशित हुआ है । इस लेख में स्त्री-शिक्षा को देश की उन्नति और विकास के लिए आवश्यक ठहराया/गयी है । अमेरिका और यूरोपीय देशों का उदाहरण देकर लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि इन देशों की उन्नति में स्त्री-शिक्षा का विशेष योग रहा है । भारत देश की स्थिति पर विचार करते हुए लेख में कहा गया है कि , '' हमारे देश की उन्नति तभी हो सकती है जब हमारी माताएँ हमारी बहनें, हमारी कन्याएँ भी सब कामों में उन्नति करें । भारत वर्ष में स्त्री-शिक्षा के अभाव को देखकर दुःख होता है । क्या वह जाति कभी उन्नति के शिखर पर पहुंच सकती है, जहां स्त्रियों की अद्योगति हो ? अकेले पुरुषों के लिए देशोद्धार नहीं हो सकता । इसे सच मानिए ।'' स्पष्ट है देशोन्नति सामाजिक उन्नति पर निर्भर है, और सामाजिक उन्नति के लिए स्त्री-शिक्षा पहली शर्त है ।

जुलाई 1913 की 'सरस्वती' में 'स्त्रियों के विषय में आत्मनिवेदन' नाम से द्विवेदी जी ने एक लेख लिखा । जिसमें उन्होंने सामंती व्यवस्था के इस सिद्धान्त को ''कि स्त्रियों को बचपन में पिता के, यौवन में पति के, और बुढ़ापे में पुत्र के अधीन रहना चाहिए ।'' आधुनिक सभ्य समाज के लिए कलंक बताकर इसकी कटु आलोचना की है । इस लेख में इन धारणाओं का भी खण्डन किया गया है कि स्त्रियों में पुरुषों के समान शक्ति और बुद्धि नहीं होती । उनका कार्य-क्षेत्र घर है । बच्चों और पति की सेवा करना उनका धर्म है । द्विवेदी जी लिखते है कि आज सभ्य और शिक्षित समाज की नारी जाति ने इन सामंती मूल्यों को मिथ्या सिद्ध कर दिया –

''कितने ही सभ्य और शिक्षित देशों में स्त्रियाँ ऐसे सैकड़ों काम करने लगी है जिन्हें पुरुष अब तक अपनी ही मिलियत समझते थे । कचहरियों में, कारखानामें , दुकानों में लाखों स्त्रियाँ तरह-तरह के पेशे करती हैं । कितनी ही स्त्रियाँ तो अपने काम में पुरुषों के भी कान काटती हैं । विद्या, विज्ञान, आविष्कार और काव्य-रचना में भी स्त्रियों ने नामवरी पाई है । इससे सिद्ध है कि परमेश्वर ने उन्हें ये सभी काम करने की शक्ति दी है ।''[39]

अंग्रेजी शासन के दिनों में भारत में समाज सुधार संबंधी जो आन्दोलन शुरू हुए थे, वे अंग्रेजी सभ्यता, संस्कृति तथा शिक्षा के प्रभाव के परिणाम थे । सदियों से अमानुषिक अत्याचार झेलती चली आने वाली नारी को अंग्रेजी राज्य में कुछ राहत मिली । अंग्रेजों ने एक ओर नारी को सामंती शिकंजे से निकालने के लिए सती प्रथा, बाल-विवाह

39- महावीर प्रसाद द्विवेदी, 'स्त्रियों के विषय में आत्म निवेदन', सरस्वती, जुलाई 1913

आदि रूढ़ियों का उन्मूलन किया तो दूसरी ओर उसके उत्थान के लिए शिक्षा की व्यवस्था की । अंग्रेजों के इन दोहरे कार्यों ने नारी में पुरुष के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने का आत्मविश्वास पैदा किया ।

नारी-उद्धार के इस कार्य का पूरा श्रेय अंग्रेजी राज्य को देते हुए आचार्य द्विवेदी ने लिखा है – 'बड़ी खुशी की बात है, हजारों वर्ष बाद, अंग्रेजी राज्य की बदौलत, समय ने अब फिर पलटा खाया है । सती प्रथा उठ गई है । लड़कियों का गला घोंटा जाना बन्द हो गया है । पत्नियाँ अब पापात्मा पतियों के हाथ से फांसी पर नहीं लटकाई जातीं । तरुण कुमारियों और कुलकाम स्त्रियों को शिक्षा देने का भी प्रयत्न अब हो रहा है । अतएव कहना पड़ता है कि स्त्रियों की यन्त्रणामयी कालरात्रि अब अवसान को पहुंचने के शुभ लक्षण दिखा रही है ।'40

नारी - मुक्ति आन्दोलन राष्ट्रीय आन्दोलन का महत्वपूर्ण पहलू था । नारी को साथ लिये बिना राष्ट्रीय संघर्ष अधूरा था । सरस्वती ने नारी - शिक्षा पर बल देकर, उनमें राष्ट्रीय चेतना उभारने का प्रयास किया , जिससे वे राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन में भाग ले सकें ।

राष्ट्रीय आन्दोलन के देशोन्नति वाले पक्ष को अपना कर 'सरस्वती' ने यह सिद्ध कर दिया कि विभिन्न क्षेत्रों में उन्नति किए बिना स्वराज्य की कल्पना असंभव है ।

40- महावीर प्रसाद द्विवेदी, 'स्त्रियों के विषय में आत्मनिवेदन', 'सरस्वती', जुलाई 1913

—

उपसंहार

'सरस्वती' का प्रकाशन हिन्दी-साहित्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना थी । जिस राष्ट्रीय साहित्य का बीज-वपन भारतेन्दु और उनके सहयोगियों ने किया था, उसी का विकास इस पत्रिका में मिलता है ।

प्रत्येक युग का साहित्य सम-सामयिक राजनैतिक, सामाजिक, तथा आर्थिक गति-विधियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता । भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन ने द्विवेदी युग में राष्ट्र के उत्थान पर बल देकर, अंग्रेजी साम्राज्य से देश की मुक्ति की पृष्ठभूमि तैयार की । 'सरस्वती' राष्ट्रीय आन्दोलन के इस प्रभाव से अछूती न रह सकी । इसलिए इस पत्रिका ने भारत की अंग्रेजों से मुक्ति के लिए देशोन्नति को पहली शर्त माना ।

द्विवेदी जी ने अपनी पुस्तक 'सम्पत्ति-शास्त्र' तथा अन्य लेखों में अंग्रेजी सरकार के शोषण का एक स्त्रोत भारत में बिलायती माल की बिक्री को बताया । 'सरस्वती' ने स्वदेशी आन्दोलन के प्रचार द्वारा एक ओर विदेशी माल के बहिष्कार के लिए जनता को प्रोत्साहित किया । दूसरी ओर, स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार तथा देशी उद्योग-धंधों की स्थापना के लिए जनता से अपील की । सरस्वती का यह कार्य देश के औद्योगीकरण में एक महत्वपूर्ण कदम था ।

अंग्रेजी राज्य में शोषण का केन्द्र भारतीय किसान था । उसी के बल-बूते पर ब्रिटिश-साम्राज्य का ढाँचा टिका हुआ था । अंग्रेजी सरकार किसान के शोषण के लिए कौन-कौन से तरीके काम में लाती थी इसकी विस्तृत चर्चा 'सरस्वती' में छपे निबंधों के अतिरिक्त, द्विवेदी जी ने अपनी पुस्तक 'सम्पत्ति-शास्त्र' में की है । किसान संगठित रूप में शोषण के खिलाफ आन्दोलन करके ही साम्राज्यवाद की जड़ें हिला सकते थे । डा० रामविलास शर्मा

ने लिखा है – 'स्वदेशी आन्दोलन और बिलायती माल का बहिष्कार अंग्रेजी राज्य को हल्का धक्का भर दे सकते थे, उसे जड़ से उखाड़ फेंकने की ताकत यहाँ के किसान आन्दोलन में ही हो सकती थी ।'[1] स्पष्ट है कि किसान को साथ लिए बिना राष्ट्रीय आन्दोलन फलीभूत नहीं हो सकता था । 'सरस्वती' में किसानों की समस्याओं को लेकर अनेक लेख छपे । कृषि की पैदावार बढ़ाकर ही देश की उन्नति संभव हो सकती थी । इसलिए इस युग के लेखकों ने वैज्ञानिक ढंग से खेती करने के लिए किसानों को प्रोत्साहित किया ।

अंग्रेजी शिक्षा साम्राज्यवाद की जड़ों को मजबूत कर रही थी । इसमें कला-कौशल तथा शिल्पकारिता का पूर्णतः अभाव था । द्विवेदी युग के लेखकों ने ऐसी शिक्षा की आलोचना की जो देश के औद्योगिक विकास में सहायक न हो सके । उन्होंने उद्योग-धंधों तथा कृषि विज्ञान की शिक्षा पर जोर दिया जिससे देश का पूंजीवादी ढंग से आर्थिक विकास संभव हो ।

सरस्वती ने जाति प्रथा, छुआ-छूत, सती प्रथा, बालविवाह आदि सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ संघर्ष करके राष्ट्रीय आन्दोलन की शक्ति को बढ़ाया । स्त्री समाज का महत्वपूर्ण अंग है । उसे शिक्षित किए बिना राष्ट्र की प्रगति संभव नहीं । इसलिए 'सरस्वती' ने स्त्री शिक्षा की ओर सरकार और जनता दोनों का ध्यान खींचा ।

'सरस्वती' उदार नीति की पत्रिका थी । उसने राजभक्ति की आड लेकर राष्ट्रीय भावनाओं को व्यक्त किया । जो नीति राजनैतिक क्षेत्र में मदनमोहन मालवीय की थी , साहित्यिक क्षेत्र में वही नीति सरस्वती ने अपनाई । कुल मिलाकर सरस्वती राष्ट्रीय उत्थान की पत्रिका थी ।

1- सं0 प्रभाकर श्रोत्रिय, हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका, मैकमिलन प्रकाशन, दिल्ली, 1978

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1- उदय भानु सिंह - महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग, लखनऊ विश्वविद्यालय, संवत् 2008

2- ए० आर० देसाई - भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, मैकमिलन प्रकाशन, प्रथम हिन्दी संस्करण, 1977

3- के० दामोदरन - भारतीय चिन्तन परम्परा (हिन्दी अनुवाद), पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली ।

4- जवाहरलाल नेहरू - हिन्दुस्तान की कहानी, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली तीसरा संस्करण, 1966

5- ताराचंद - भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का इतिहास, खण्ड-2, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1969

6- नाथू राम शंकर शर्मा - शंकर - सर्वस्व, प्रथम संस्करण

7- पट्टाभि सीतारमय्या - कांग्रेस का इतिहास, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली प्रथम हिंदी संस्करण, 1935

8- प्रेमचंद - कुछ विचार, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1973

9- प्रभाकर श्रोत्रिय (सं०) - हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका, मैकमिलन प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1978

10- बैजनाथ सिंह - द्विवेदी पत्रावली, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम हिन्दी संस्करण, 1954

11- भगवानदास माहोर - 1857 के स्वाधीनता संग्राम का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर, 1976

12- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - भारतेन्दु ग्रंथावली

13- महावीर प्रसाद द्विवेदी - सम्पत्तिशास्त्र, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, 1908

14- मैथिलीशरण गुप्त - भारत - भारती, साहित्य सदन, चिरगांव (झांसी) 32 वां संस्करण ।

15- रजनी पामदत्त - आज का भारत, मैकमिलन प्रकाशन, प्रथम हिन्दी संस्करण, 1977

16- रजनी पामदत्त - भारत वर्तमान और भावी, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1976

17- रामविलास शर्मा - भारतेन्दु हरिश्चंद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1966

18- रामविलास शर्मा - महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1977

19- रामविलास शर्मा - भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1975

20- बिपन चन्द्र - स्वतंत्रता संग्राम, नेशनल बुक ट्रस्ट, (हिन्दी संस्करण), 1975

21- श्रीकृष्ण लाल - आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, हिन्दी परिषद, प्रकाशन, प्रयाग विश्वविद्यालय, चतुर्थ हिन्दी संस्करण, 1963

—

पत्र-पत्रिकाएँ

1- आलोचना :- अप्रैल-जून, 1977 एवं जुलाई-सितम्बर, 1977

राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली ।

2- मर्यादा - मई-अक्टूबर, 1914

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग

3- सरस्वती - 1900 से 1920 तक के सभी अंक

इंडियन प्रेस, इलाहाबाद ।